CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

नवभारतके युगपुरुष

अक्टूबर १९६२

५० नये पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ष ४३ **वैदिक धर्म** अंक १०

क्रमांक १६५ : अक्टूबर १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ हम श्रेष्ठ मार्गसे दूर न होवें (वैदिक प्रार्थना) ३५१
२ स्वाध्याय-मण्डल वृत्त ३५२
३ विवाहके समय राम और सीताकी आयु पर एक दृष्टि श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा ३५३
४ वेदमंत्रोंमें आनेवाले युद्धके नाम श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ३५७
५ वेद-विद्याओंके अनुसन्धानकी आवश्यकता श्री वीरसेन वेदश्रमी ३७०
६ परम धर्मका पालन ३७४
७ आर्यसमाज और विचारोंमें भेद श्री गंगाप्रसाद ३७७
८ स्वप्नलोककी समस्याका उत्तर श्री नाथूलाल वानप्रस्थी ३७९
९ भागवत प्रेम श्री वसिष्ठ ३८२
१० अगम्य पंथके यात्रिकको आत्म-दर्शन चंचलबहेन मा. पाठक ३८५
११ बुद्धमत श्री सर्वजित गौड ३८८
१२ समालोचना ३९०
१३ तुलसीके उपवन लगाइये श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी ३९१

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १-३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है।

भाग ५-६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

भाग ७-१० इनमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

भाग ११ इसमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है।

भाग १३-१८ इनमें क्रियापद-विचारकी पाठविधि बताई है।

भाग १९-२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. =)
२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १।)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

"वैदिक धर्म"

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से रु. ५.६१, विदेशके लिये रु. ६.५०
डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो.-'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)
(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)		
१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि ,, ,,	२)	.२५
३ शुनःशेप ,, ,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप ,, ,,	१)	.२५
५ काण्व ,, ,,	२)	.२५
६ सव्य ,, ,,	१)	.२५
७ नोधा ,, ,,	१)	.२५
८ पराशर ,, ,,	१)	.२५
९ गोतम ,, ,,	२)	.३७
१० कुत्स ,, ,,	२)	.३७
११ त्रित ,, ,,	१.५०	.३१
१२ संवनन ,, ,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ ,, ,,	.५०	.१९
१४ नारायण ,, ,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति ,, ,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी ,, ,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा ,, ,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि ,, ,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ ,, ,,	७)	१)
२० भरद्वाज ,, ,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ आश्विन : विक्रम संवत् २०१९

वैदिकधर्म

हम श्रेष्ठ मार्गसे दूर न होवें

मा प्रगाम पथो वयं
मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥

ऋ. १०।५७।१

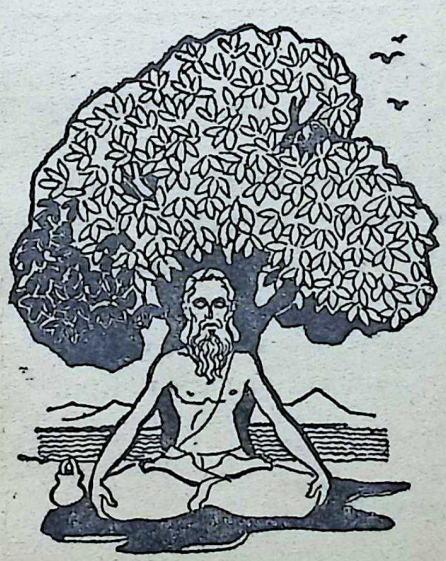

हे इन्द्र ! (वयं पथः मा प्रगाम) हम उत्तम मार्गसे कभी भी विचलित न हों, तथा (सोमिनः यज्ञात् मा) सुखदायक यज्ञसे भी हम दूर न हों, (नः अन्तः अरातयः मा तस्थुः) हमारे अन्दर राग द्वेष आदि शत्रु न रहें ।

हे प्रभो ! सन्मार्ग से विपरीत हम न कभी चलें,
इस सम्पदामय यज्ञसे प्रभुवर कहीं न कभी टलें ।
विश्वमें कोई हमारा शत्रु प्रतिपक्षी न हो,
मदलोभमात्सर मोह से हारा हमारा मन न हो ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस महीने वेद मुद्रणनिधिमें निम्न रकम जमा हुई—

श्री. प्रिन्सिपाल आर्ट्स सायन्स एन्ड कोमर्स कॉलेज, चालीसगांव २४०

,, प्रिन्सिपाल आर्ट्स सायन्स कोमर्स कॉलेज, फैजपुर १००

,, उकडभाई कल्याणजी पटेल, मरला २१.२५

,, घेलाभाई एम्. पटेल, राजकोट-१ २५०

,, कृष्ण नारायण कुलकर्णी, दहिसर-मुंबई-६८ ५

,, महादेव बाळकृष्ण आपटे, बडोदें १००

,, कन्हैयालाल देवी सहाय तमाकुवाले, दिल्ली ७५०

श्री. नरेन्द्र मुलजी एन्ड दुलेराय मुलजी, माझगांव-मुंबई-१० १५

कुल रु. १४८१.२५

पूर्व प्रकाशित रु. १,२०,७४९.५३

कुल जमा रु. १,२२,२३०.७८

मराठी सामवेदकी छपाई चालू है। हिन्दीमें 'गीता-पुरुषार्थबोधिनी' की छपाईके समाप्त हो जानेपर अथर्ववेद (ब्रह्मविद्या प्रकरण) की छपाई चालू है। 'दैवतसंहिता' का भी प्रकाशन हो रहा है। गुजरातीमें भी अथर्ववेद-भाग-५ (मेधाजनन, संगठन और विजय) छप रहा है।

मंत्री- स्वाध्यायमंडल, पारडी

पृष्ठसंख्या ६९०] चाणक्य-सूत्राणि [मूल्य १२) डा.व्य. २)

आर्य चाणक्यके ५७१ सूत्रोंका हिन्दी भाषामें सरल अर्थ और विस्तृत तथा सुबोध विवरण। भाषान्तरकार तथा व्याख्याकार स्व. श्री रामावतारजी विद्याभास्कर, रतनगढ (जि. बिजनौर)। भारतीय आर्य राजनैतिक साहित्यमें यह ग्रन्थ प्रथम स्थानमें वर्णन करने योग्य है यह सब जानते हैं। व्याख्याकार भी हिन्दी जगत्में सुप्रसिद्ध हैं। भारत राष्ट्र अब स्वतन्त्र है। इस भारतकी स्वतन्त्रता स्थायी रहे और भारत राष्ट्रका बल बढे और भारत राष्ट्र अग्रगण्य राष्ट्रोंमें सन्मानका स्थान प्राप्त करे, इसकी सिद्धता करनेके लिये इस भारतीय राजनैतिक ग्रन्थका पठन पाठन भारतभरमें और घरघरमें सर्वत्र होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये इसको आज ही मंगवाइये।

श्री मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विवाहके समय

राम और सीताकी आयु पर एक दृष्टि

[लेखक- आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा, ' पथिक ' बी. ए., कानपुर]

पौराणिकोंका कथन है कि विवाहके समय श्रीरामकी आयु १६ वर्ष और सीताजीकी ६ वर्षकी थी।

पौराणिक पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्यावारिधि लिखते हैं।

ऊनषोड्शवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥
(बाल. स. २०, श्लो. २)

हे विश्वामित्रजी अभी रामचन्द्र सोलह वर्षसे भी कम हैं ये राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सकते, इसी समय रामचन्द्र उनके संग गए और यज्ञकी रक्षा कर धनुष तोड जानकी विवाही कहिये, यह विवाह कैसा हुआ। ●

समीक्षाः— मिश्रजीके दिए हुए प्रमाणसे यह कहां सिद्ध होता है कि श्रीरामजीका विवाह १५ वर्षमें हुआ।

महर्षि वाल्मीकी लिखते हैं कि।

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः।
(बाल. सर्ग ७२, श्लो. ७)×

अर्थात्— ये दशरथके पुत्र रूप और यौवनसे युक्त हैं।'

यदि श्रीरामचन्द्रजीकी आयु १५ वर्षकी थी तो लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इनसे भी छोटे होगें और चारों भ्राताओंका विवाह जनकपुरीमें ही हुआ था।

दशरथजीके चारों पुत्रोंको ' यौवनशाली ' कहा गया है फिर भी वे लोग अल्पवयस्क कैसे थे। ' यौवन ' किस अवस्थाका नाम है:— सुश्रुतके मतानुसार।

आपंचविंशतेर्यौवनम्। आषोडशाद् वृद्धिः।
(सूत्र स्थान अ. ३५)

अर्थात्— ' १६ वें वर्ष तक वृद्धि अवस्था तथा २५ वें वर्षमें ' यौवन ' होता है।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह अल्पावस्थामें नहीं हुआ था। उपर्युक्त श्लोक वशिष्ठ और विश्वामित्रके वार्तालापमें है तो क्या वे दोनों अज्ञानी थे जो १५ वर्षमें ' यौवनशाली ' कहते।

राम और लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रजी जनकपुरमें पहुंचे ' उस समय दोनों भ्राताओंके अनुपम रूप-लावण्य और सुसंगठित शरीरको देखकर राजा जनकने आश्चर्यके साथ मुनिसे पूछा—

पुनस्तं परिपप्रच्छ प्रांजलिः प्रयतो नृपः।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ॥ १७॥
गजतुल्यगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ॥ १८॥
यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने १९
(बाल. सां ५०)

अर्थात्— ' हे मुने! देवतुल्य पराक्रमी, सिंह तथा हाथीके सदृश चाल वाले, महान् पराक्रमी, सिंह और बडे भारी मत्त बैलके समान, रूपसे अश्विनीकुमारोंके तुल्य, यौवनावस्थाको प्राप्त और अपनी इच्छासे देवलोकसे पृथ्वीपर

● दयानन्द तिमिर भास्कर पृष्ठ ८० संवत् १९६२ इ. में श्री वेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय, बम्बईमें तीसरी बार मुद्रित व प्रकाशित।

× सन् १९४१ ई. में भारत मुद्रणालय औंधमें मुद्रित तथा स्वाध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम पारडी, जि. सूरत (गुजरातराज्य) द्वारा प्राप्य, तुलना करो, कल्पतरु मन्त्रालय, बम्बईमें सन् १८८९ ई. में मुद्रित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आए देवताओंके तुल्य, ये दोनों कुमार किसके हैं। और हे मुने! किसलिए यहां पर आए हुए हैं और कैसे पैदल आए हैं।'

यहां राजा जनक श्रीराम-लक्ष्मणको 'समुपस्थित यौवनौ' कहते हैं। उनकी यह उक्ति धनुष भंगके पूर्व की है।

इससे वे यौवन (तरुण) सिद्ध होते हैं।

संन्यासीके रूपमें जब रावण, सीताका हरण करने आता है तब सीता संसार-त्यागी अतिथि, बात न करनेसे शायद क्रुद्ध होकर शाप दे देगा, इस आशंकासे अपना परिचय देती हुई कहती है कि—

ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम्।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत्॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नामास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया॥
उषित्वा द्वादशसमा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुंजाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी॥
मम भर्ता महातेजा वयसा पंचविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥
(अरण्यकांड स. ४७, श्लोक २३, ४।१०)

अर्थात्— 'मैं मिथिलापति जनककी कन्या, श्री रामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीता हूं। मैंने १२ वर्षतक इक्ष्वाकुवंशी श्रीरामके घरमें निवास कर मनुष्यमें उपर्युक्त सभी सुख भोग किए है। अब मेरी कोई भी वासना शेष नहीं है। मेरे महातेजस्वी भर्तार श्रीरामकी अवस्था २५ वर्ष और मेरी १८ वर्षकी थी।'

इस वर्णनसे पता लगता है कि जब सीता वनमें आयी थीं उस समय उनकी अवस्था १८ वर्षकी थी, विवाहोपरान्त १२ वर्ष वह ससुरालमें रहीं, तब ६ वर्ष बच रहते हैं। क्या सीताजीकी अवस्था विवाहके समय ६ वर्षकी थी।

अरण्यकांडके उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि विवाहके समय सीताजी पूर्ण वयस्क पति- संयोगके अनुकूल, बुद्धिमति थीं। डा. शान्ति कुमार नानूराम व्यास एम्. ए., पी. एच्. डी., × श्री अनन्त सदाशिव अल्तेकर÷ और पादरी कादर कामिल बुल्के * एम्. ए., डी. फिल. तीनों ही इसे प्रक्षिप्त मानते हैं।

विश्वामित्र और जनकजीसे वार्तालाप होता है, उस समय जनकजी कहते हैं—

भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्।
(बाल. सर्ग ६६, श्लोक १५)

अर्थात्— 'इस प्रकार जब मेरी 'ममात्मजा०' (मेरी आत्मासे व मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई) कन्या सीता 'वर्धमाना' प्राप्त यौवना + हुई।'

यहां मूल श्लोकमें 'वर्धमाना' शब्द है। वाल्मीकीय रामायणके टीकाकारोंमेंसे किसीने इसका अर्थ 'यौवनसम्पन्ना' तो किसीने प्राप्तयौवना' किया है।

इससे ज्ञात होता है कि विवाहके पूर्व सीताके शरीरमें यौवनका सूत्रपात हो गया था। अतः 'समुपस्थित यौवन' रामचन्द्रजीके साथ जब सीताजीका विवाह हुआ तब वह भी 'वर्धमाना' अर्थात् 'प्राप्तयौवना' थी।

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नके साथ क्रमसे सीता, उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्तिका विवाह हो गया। सम्राट् दशरथ पुत्र और पुत्रवधुओंके साथ अयोध्या वापस आ गए। राजमहलमें महोत्सव हो रहा है। मांगलिक कार्योंके पश्चात्—

× 'रामायणकालीन समाज' प्रथम संस्करण पृष्ठ ११५

÷ 'पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन' पृष्ठ ६३

* 'रामकथा' प्रथम संस्करण, पृष्ठ २८८

० 'ममात्मजां' शब्दपर टिप्पणी, आचार्य रामदेवजी बी. ए. कृत 'भारतवर्षका इतिहास'

+ डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास भी 'प्राप्तयौवना' (रामायणकालीन समाज, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११५) अर्थ करते हैं — लेखक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रेमिरे मुदिताः सर्वाः भर्तृभिः सहिता रहः ।
कुमाराश्च महात्मानो वीर्येण प्रतिमा भुवि ॥
(बालकांड, सर्ग ७७, श्लोक १४)

अर्थात्— 'सब मुदित हुई (राजपुत्रियों) ने एकान्तमें अपने पतियोंके साथ रमण किया। (इसी प्रकार) संसारमें पराक्रममें अप्रतिम महात्मा राजकुमारोंने भी रमण किया।'

मूल श्लोकमें 'रेमिरे' शब्द है, इसका अर्थ 'रमण करना' होता है। इससे सीता आदि चारों बहिनोंकी आयुका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राम, लक्ष्मण तो थे ही 'प्राप्त यौवन'

पौराणिकोंके कथनानुसार ६ वर्षकी कन्याके साथ रमण कैसे किया जा सकता है। यह तो असंभव है।

सीताने अत्रि ऋषिकी स्त्री अनुसूयासे कहा—

पतिसंयोगसुलभं वयो वीक्ष्य पिता मम।
चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ॥
(अयोध्या कां. सर्ग ११८, श्लो. ३४)

अर्थात्— 'पिताने जब मेरी 'पति संयोग सुलभ' अवस्था देखी तो उनको बडी चिन्ता हुई।' जैसे दरिद्रको धननाश होनेपर विषाद होता है मेरे पिताको भी वैसा ही हुआ।'

इस श्लोकमें 'पति संयोग सुलभ' शब्द आता है, किसी किसी टीकाकारने इस पदकी व्याख्यामें 'विवाह योग्य वयस्य' लिखा है। इसका अर्थ होगा 'पतिसे संयोगके लिए सुलभ'। विवाहके पूर्व सीताजीके लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है और विवाहके बाद ही 'रेमिरे' शब्द आया है। अतएव इसका अर्थ सहज ही यह होता है कि 'वर्धमाना पत्नीके साथ 'प्राप्त यौवन' पतिका मिलाप हुआ।

'अध्यात्म रामायणके आदि कांडके ६ ठे अध्यायमें कहा है कि 'मिथिलाकी राजसभामें श्री रामचन्द्रजीने हंसते हुए शिव धनुषको तोड डाला। राजा जनक अपने सारे रनवासके सहित आनन्दसे विह्वल हो गए। सीता, सोनेकी माला हाथमें लिए मुस्कुराती हुई धीरे धीरे रामके समीप आयी और उनके गलेमें माला पहनाकर वह नितान्त प्रेम सागरमें डूब गई। मूल वर्णनका चमत्कार देखिए—

सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे।
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चलित नूपुराः।
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तः व्यंजितस्तनी ॥
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ।

यह 'स्मितवक्त्रा' और 'स्मयमाना मुदं ययौ' इन दोनों विशेषणोंसे सीताकी विवाह कालीन अवस्थाका पर्याप्त आभास मिलता है। छः वर्षकी बालिकाके लिए ऐसी उक्तियां कभी नहीं कही जा सकतीं। 'वस्त्रान्तः व्यंजितस्तनी' विशेषणसे स्पष्ट प्रकट होता है कि विवाहके समय सीता 'प्राप्त यौवना' थी और उसकी अवस्था महर्षि वाल्मीकिके कथनानुसार 'पति संयोग सुलभ' हो चुकी थी। इस प्रसंगको पढकर कोई संस्कृतज्ञ यह कह सकता कि सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी?

जनकपुरीसे वापस आनेपर राजमहलमें विशेष धूमधाम है। सबके साथ मिलने जुलनेके बाद चारों भाई—

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसम्मिताः।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्व मन्दिरे ॥
मातृपितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः।
रेमे वैकुंठ सवने श्रिया सह यथा हरिः ॥
(अध्यात्मरामायण १।७।५२-५४)

अर्थात्— 'देव प्रतिम राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अपने अपने महलोंमें अपनी अपनी भार्याओंके साथ आमोद प्रमोद करने लगे। जैसे वैकुंठमें लक्ष्मीके साथ विष्णुका समय सुखपूर्वक व्यतीत होता है वैसे ही माता पिताके आदरसे श्री राम सीताका समय भी बडे आनन्दसे व्यतीत होने लगा।'

जिस प्रकार वाल्मीकि ऋषिने 'पति संयोग सुलभ वय' व 'रेमिरे मुदिता रहः' का प्रयोग किया है उसी प्रकार अध्यात्म रामायणमें भी 'वस्त्रान्तर व्यंजितस्तनी' और 'रेमिरे' का व्यवहार किया है।

अतः सीताकी आयु विवाहके समय छः वर्षकी कदापि नहीं हो सकती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्याय--मण्डल, पारडी [जि. सूरत] द्वारा संचालित

अखिल भारतीय संस्कृत भाषा परीक्षा समिति

अवश्य जीतिये] [अवश्य जीतिये

परीक्षार्थियोंके लिए स्वर्णावसर

☆

हमारी परीक्षाओंके सब केन्द्रव्यवस्थापकों व परीक्षार्थियोंको सूचित करते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि परीक्षार्थियोंके उत्साहवर्धनार्थ प्रत्येक परीक्षामें सर्व प्रथम आनेवाले छात्रोंको कुछ विशेष पुरस्कार देनेकी योजना हमने बताई है, वह निम्न प्रकार है—

प्रथमा	रजत मण्डित पदक	मूल्य १०)
प्रारंभिणी	,, ,, ,,	,, १०)
प्रवेशिका	,, ,, ,,	,, १५)
परिचय	,, ,, ,,	,, १५)
विशारद	स्वर्ण मण्डित रजत पदक	,, २०)

साहित्य परीक्षायें

साहित्यप्रवीण	स्वर्ण मण्डित पदक	,, १५)
साहित्यरत्न	(गोल्ड प्लेटेड)	,, २०)
साहित्याचार्य	,,	,, २५)

इंग्लिश परीक्षायें

अंग्रेजी I	रजत मण्डित पदक	,, १०)
अंग्रेजी II	,, ,, ,,	,, १०)
अंग्रेजी III	,, ,, ,,	,, १५)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदमन्त्रोंमें आनेवाले युद्धके नाम

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

युद्ध अनेक प्रकारके होते हैं, इस कारण उसके नाम भी अनेक होते हैं । निघण्टुमें ४६ युद्धके नाम दिये हैं । इनका विचार करनेसे कितने प्रकारके युद्ध हो सकते हैं, इसका ज्ञान हो सकता है । ४६ युद्धके नाम हैं, इसीसे ज्ञात हो सकता है कि, युद्धके विषयमें कितना सूक्ष्म विचार हुआ होगा । यदि विचार न होता, तो इतने नाम नहीं आते । पर यहां ये नाम प्रयुक्त हुए हैं, निघण्टुकारने ये युद्धके नाम हैं, ऐसा माना है । अर्थात् इतने युद्धके नाम माने गये और प्रयुक्त हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है । इन नामोंमें प्रथम विचार करने योग्य ' मम-सत्यं ' यह युद्ध नाम है—

१ मम--सत्यम्

' मेरा कथन ही सत्य है ' यह इसका अर्थ है । ' मेरा कथन ही सत्य है, दूसरेका कथन सत्य नहीं है, ऐसा आग्रह जहां होगा, वहां युद्ध संभव हो सकता है । ' मेरा ही कथन सत्य है, दूसरेका कथन सत्य नहीं है ' ऐसा आग्रह हुआ तो उन दोनों व्यक्तियोंका, अथवा दोनों पक्षोंका, किंवा दोनों राष्ट्रका संघर्ष होना स्वाभाविक है । संघर्ष ही युद्ध है । इसलिये ' मम-सत्यं ' यह युद्धका नाम वेदमें प्रयुक्त है । इसके प्रयोगका मंत्र यह है—

त्वां जना ममसत्येधिन्द्र
संतस्थाना विह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्
नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥

ऋ. १०।४२।४; अथर्व. २०।८९।४

' हे इन्द्र ! (ममसत्येषु) मेरा पक्ष सत्य है ऐसा मानकर (समीके संतस्थानाः) युद्धमें उपस्थित होनेवाले (जनाः) लोग (त्वां विह्वयन्ते) तुझे सहायार्थ बुलाते हैं । (यः अत्र हविष्मान्) जो यहां हवनसामग्री लेकर यज्ञ करता है उसके साथ इन्द्र (युजं कृणुते) मित्रता करता है, (शूरः) शूर इन्द्र (असुन्वता सख्यं न वष्टि) सोमयाग न करनेवालेके साथ मित्रता नहीं चाहता ।

चार वेदोंमें यह एक ही मंत्र है कि जिसमें ' मम--सत्यं ' इस युद्धवाचक पदका प्रयोग हुआ है । मेरे पक्षका यह कहना ही सत्य है, दूसरेका कहना असत्य है, ऐसा आग्रह बढ गया, तो युद्ध उन दो पक्षोंमें होता है । यह त्रिकालाबाधित सत्य है । इस ' मम-सत्यं ' इस पदने यह वास्तविक सत्य दर्शाया है । अपने पक्षके मतके विषयमें दुराग्रह नहीं हुआ, और दूसरे पक्षके मतमें भी जो सत्यता होगी उसको विचारमें लेनेकी सहिष्णुता जहां होगी, वहां युद्ध नहीं होंगे, यह भाव यहां है । अतः अपने मतका दुराग्रह नहीं धारण करना चाहिये, इस ' मम-सत्यं ' पदकी सूचना है ।

२ समीके

' समीक ' पद वेदमें युद्धवाचक करके आता है । इसका यौगिक अर्थ ' (सं) मिलकर (ईं) अधिकार प्राप्तिके लिये (क) प्रयत्न करना अथवा ' (सं) मिलकर (ईं) शत्रुत्व (क) करना । ये दोनों अर्थ युद्धका संभव निर्माण करते हैं । ' ईरीश्वरो भवेच्छत्रुः (एकाक्षरी) ' ईं ' का अर्थ ' ईश्वर ' अथवा ' शत्रु ' है । यहां दोनों अर्थ लेकर अर्थ किया है । अधिकार अर्थात् ईश्वरत्व प्राप्त करनेके लिये दो पक्षोंमें झगडा हो सकता है, अथवा आपसमें मिलकर किसीके साथ शत्रुत्व करनेसे भी झगडा होनेकी संभावना हो सकती है । इस कारण यह ' समीक ' पद युद्धवाचक होता है इसका प्रयोग वेद मंत्रोंमें होता है देखिये--

सम्मिन्नरो विह्वयन्ते समीके
रिरिक्वांसः तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत् त्यागं उभयासो अग्मन्
नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ऋ. ४।२४।३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(समीके) युद्धमें (नरः) नेता लोग (तं इत् विह्वयन्ते) उस इन्द्रको ही अपने सहाय्यार्थ बुलाते हैं, जिससे (तन्वः रिरिक्वांसः) शरीरोंका नाश करनेवाले युद्धमें (त्रां कृण्वते) अपना संरक्षण कर सकते हैं, (यत्) जब (उभयासः मिथ त्यागं) दोनों पक्षके लोग अपने सर्वस्वका त्याग करनेको तैयार होते हैं, तब (नरः) लोग (तोकस्य तनयस्य सातौ) बालबच्चोंके संरक्षणके लिये उसीका आश्रय करते हैं '।

यहां ' समीके नरः तं विह्वयन्ते ' युद्धमें नेता लोग इन्द्रको ही अपने सहायार्थ बुलाते हैं ऐसा कहा है तथा और देखिये—

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम
नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके
अभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ऋ. ७।२१।९

' हे इन्द्र ! (ते नमोवृधासः सखायः विश्वह स्याम्) तुझे नमस्कार करनेवाले हम तेरे मित्र होकर सदा रहेंगे । हे (महिना तरुत्र) अपनी शक्तिसे सत्वर तारण करनेवाले इन्द्र ! (ते अवसा) तेरे संरक्षणसे (समीके) युद्धमें (अर्यः अभीतिं) शत्रुके आक्रमणका तथा (वनुषां शवांसि) हिंसकोंके बलोंका हम प्रतीकार करेंगे ।' इस मंत्रमें ' समीके ' पद युद्धवाचक है । तथा और देखिये—

इन्द्रं इद् देवतातये इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे
इन्द्रं धनस्य सातये ॥

ऋ. ८।३।५; अथर्व २०।११८।३

' (देवतातये इन्द्रं) यज्ञके लिये हम इन्द्रको बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति इन्द्रं) अहिंसापूर्ण यज्ञ चालू होने पर हम इन्द्रको बुलाते हैं । (समीके वनिनः इन्द्रं हवामहे) युद्धमें विजय प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्रको बुलाते हैं तथा (धनस्य सातये इन्द्रं) धनका दान मिले ऐसी इच्छा हुई तो भी हम इन्द्रको ही बुलाते हैं ।

यहां युद्धमें विजय प्राप्त करना हो तो हम इन्द्रको बुलाते हैं, ऐसा जो कहा है वहां युद्धवाचक ' समीके ' पद आया है । यह पद इतनी बार ही वेदमें आया है और इसका अर्थ सर्वत्र ' युद्ध ' ही है ।

३ विवाक्

' विवाक् ' पद युद्धवाचक वेदमें आता है । ' वि-वाक् ' विरुद्ध भाषण, वितण्डावाद करनेवाला जो होता है वह शत्रु ही होता है, उसके साथ युद्ध होता है । विरोधी भाषण करनेके कारण कितने झगडे इस भूमंडल पर होते हैं, यह देखनेसे इस ' वि-वाक् ' का ठीक युद्ध विषयक भाव ध्यानमें आ जायगा । इसके उदाहरण अब देखिये—

बिभेद वलं नुनुदे विवाचो
अथा भवद् दमिताभिक्रतुनाम् ॥ ऋ. ३।३४।१०

' इन्द्रने (वलं बिभेद) बल नामक शत्रुको छिन्न भिन्न किया, (विवाचः नुनुदे) शत्रुओंको हटा दिया, (अभिक्रतुनां दमिता अभवत्) प्रबल शत्रुओंको वह दबानेवाला हुआ ।' तथा और देखिये—

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः
पुरु सहस्राशिवा जघान ।
तत् तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि
पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥

ऋ. १०।२३।५; अथर्व २०।७३।६

(यः) जिस इन्द्रने (विवाचः मृध्रवाचः) विरुद्ध बोलनेवाले और युद्धकी भाषा बोलनेवाले (अ-शिवाः पुरु-सहस्रा वाचा जघान) ऐसे हजारोंसे भी अधिक अशुभ शत्रुओंको अपनी वाणीसे ही मार दिया, (तत् इद अस्य पौंस्यं गृणीमसि) वह इसका सामर्थ्य स्तुति करने योग्य है । (यः पिता इव) जो पिताके समान (तविषीं शवः वावृधे) अपनी शक्ति और सामर्थ्य बढाता है ।

' विवाक् ' पद निघण्टुमें युद्ध नामोंमें आया है । यह पद विरुद्ध भाषण करनेसे जो युद्ध होते हैं उनका वाचक है ।

४ महाधन

' महाधन ' यह पद युद्धवाचक नामोंमें वेदमें आता है । ' महाधन ' का अर्थ ' बडा धन ' है । युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर शत्रुके नगर लूटकर बहुत धन प्राप्त होता है । इस कारण युद्धमें विजय प्राप्त करना, यह बहुत धन प्राप्त करनेका एक बडा साधन समझा जाता है । युद्धमें विजेता वीरको विजय प्राप्त करनेके पश्चात् शत्रुको लूटनेका अधिकार रहता है, ऐसा इस ' महाधन '

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदसे प्रतीत होता है। वेद भी विजयी वीरको शत्रुको लूटनेका अधिकार देता है, ऐसा इस पदसे प्रतीत होता है। देखिये इस महाधनके मंत्रके उपयोग—

इन्द्रं वयं महाधने इन्द्रं अर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥
ऋ. १।७।५; अथर्व २०।७०।११

(वयं इन्द्रं महाधने हवामहे) हम इन्द्रको बडे युद्धमें सहायार्थ बुलाते हैं और (इन्द्रं अर्भे) हम इन्द्रको छोटी लडाईमें भी बुलाते हैं, (वृत्रेषु वज्रिणं युजं) तथा शत्रुओं पर हम मित्र वज्रधारी इन्द्रको भेजते हैं। तथा—

उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिः
भये चित् सुक्षितिं दधे।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने
नार्भे अस्ति वज्रिणः॥ ऋ. १।४०।८

'ब्रह्मणस्पति (क्षत्रं उप पृञ्चीत) अपने क्षात्र बलको इकट्ठा करता है, (राजभिः हन्ति) अपने क्षत्रियोंके साथ मिल कर शत्रुको मारता है। (भयं चित् सुक्षितिं दधे) भय उपस्थित होनेपर अपने स्थानपर वह स्थिर रहता है। (महाधने) बडे युद्धमें (अस्य वर्ता न) इसका निवारण कोई नहीं कर सकता, (न तरुता) न इसका पराभव करनेवाला भी कोई है, (वज्रिणः न अर्भे अस्ति) इस वज्रधारी इन्द्रका छोटे युद्धमें भी निवारण करनेवाला कोई नहीं है। तथा—

याभिः शर्यातं अवथो महाधने
ताभिः ऊषु ऊतिभिः आश्विना गतम्॥
ऋ. १।११२।१७

'(याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षणोंसे तुमने (महाधने शर्यातं अवथः) बडे युद्धमें शर्यातका संरक्षण किया (ताभिः) उन संरक्षणोंके साथ, हे अश्विदेवो! हमारे संरक्षणके लिये (आगतं) आवो।'

अस्माकं बोध्यविता महाधने॥ ऋ. ६।४६।४
'महायुद्धमें हमारा संरक्षण करनेवाला हो'।

यदिन्द्र सर्गे अर्वतः चोदयसे महाधने॥
ऋ. ६।४६।१३

'हे इन्द्र! तू अपने (अर्वतः) घोडोंको (महाधने चोदयसे) बडे युद्धमें चलाता है।'

इन्द्राग्नि आहितन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः।
मा नो अस्मिन् महाधने परा वक्तं गविष्टिषु॥
ऋ. ६।५९।७

हे इन्द्र और अग्नि! वीर लोग अपने बाहुओंसे धनुष्य तान रहे हैं। इसलिये (अस्मिन् महाधने) इस महायुद्धमें (गविष्टिषु) गौवें प्राप्त होनेके समयमें (नः मा परावक्तं) हमें दूर न छोडो अर्थात् हमारे सहायक होकर रहो। तथा—

मा नो अस्मिन् महाधने परावर्ग् भारभृद्यथा।
संवर्गं संरायिं जय॥ ऋ. ८।७५।१२

'(अस्मिन् महाधने) इस महायुद्धमें (नः मा परावर्क्) हमें दूर न करो (यथा भारभृत्) जैसा बोझा उठानेवाला अधिक भार होनेपर भारको फेंकता है, वैसा हमें न दूर फेंक। (संवर्गं रायिं संजय) तू शत्रुकी संपूर्ण संपत्ति जीत कर प्राप्त कर,।

(संवर्गं रायिं संजय) शत्रुकी सब प्रकारकी संपत्ति विजय करके प्राप्त करो। विजय प्राप्त करनेसे शत्रुके सब वर्गोंकी संपत्ति विजयी वीरको प्राप्त होती है। युद्धमें जो वीर जाते हैं वे उत्तम कपडे, उत्तम जेवर पहनकर सजकर आते हैं। युद्धमें यदि वे मरे तो मरे हुए सब वीरोंके शरीर परके उत्तम कपडे और जेवर विजयी वीर लेता है इस कारण 'महाधन' पद महासंग्रामका वाचक वेदमें माना गया है। क्योंकि संग्राममें विजय प्राप्त करनेसे शत्रुका संपूर्ण धन विजयी वीरको मिलता है। युद्धके नामोंमें 'महाधन' पद है, इसका भाव यह है।

५ धन

इसी तरह धन पद भी वेदमें युद्ध वाचक है। युद्धमें विजय कमानेका अर्थ धन कमाना ही अर्थ है देखिये—

त्वां विद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उप ब्रूते धने हिते।
ऋ. १।४०।२

हे (सहसः पुत्र) बलका रक्षण करनेवाले वीर! (धने हिते) युद्ध छिड जानेपर (त्वां इत्) तुझे ही (मर्त्यः उप ब्रूते) मनुष्य अपने सहाय्य करनेके लिये बुलाते हैं। तथा—

सद्यो जंघां आयसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥ ऋ. १।११६।१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'तुमने विश्पलाके (आयसी जंघां) लोहेकी टांग (सद्यः) तत्काल (धने हिते सर्तवे) युद्ध शुरू होनेपर चलने फिरनेके लिये (प्रत्यधत्तं) लगा दी।' युद्ध छिडने पर चलना और फिरना युद्धकी भूमिमें आवश्यक होता है। वह करनेके लिये लोहेकी टांग लगादी और टूटी हुई टांग काट कर फेंक दी। तथा—

धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः। ऋ. ३।१३२।५

(धने हिते) युद्ध छिड जानेपर (श्रवस्यवः तरुषन्त) कल्याण प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले वीर (तरुषन्त) शत्रुपर हमला करते हैं।

अभूरु वीर गिर्वणो महां इन्द्र धने हिते।
भरे नितन्तसाय्यः॥ ऋ. ६।४५।१३

हे (गिर्वणः वीर इन्द्र) प्रशंसनीय वीर इन्द्र! (धने हिते भरे) युद्ध शुरू होनेपर (महान् वितन्तसाय्यः अभूः) शत्रुओंका बडा विनाश करनेवाला तू हुआ है।

इस मंत्रमें 'धने हिते' तथा 'भरे' ये पद युद्ध वाचक आ गये हैं। 'भरे' का अर्थ 'धनसे भरपूर भर देना' है। यह कार्य युद्धमें विजय प्राप्त करनेसे होता है। तथा—

यस्त्वा देवि सरस्वति उपब्रूते धने हिते।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये॥ ऋ. ६।६१।५

हे सरस्वती देवि! (वृत्रतूर्ये इन्द्रं न) वृत्रके साथ होनेवाले युद्धमें जैसा सहाय्यार्थ इन्द्रको बुलाते है, उस तरह (धने हिते) युद्ध शुरू होनेपर (यः त्वा उपब्रूते) जो तुझे बुलाता है उसका तू रक्षण कर। तथा—

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते।
येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ऋ. ८।३।९; अथर्व. २०।९।३; २०।४९।६

(धने हिते) युद्ध शुरू होनेपर (येन) जिस सामर्थ्यसे तूने (यतिभ्यः) यतियोंसे धन लाकर (भृगवे) भृगुको दिया था और (येन) जिस सामर्थ्यसे (प्रस्कण्वं आविथ) प्रस्कण्वकी तूने रक्षा की, वह सामर्थ्य तू हमें दे।

इस मंत्रमें यतियोंका धन लाकर भृगुको देनेका उल्लेख है। 'यति' का अर्थ संन्यासी, उदासी, जो गृहस्थ धर्ममें न रहकर संसार छोडकर उदासी संप्रदायमें रहते थे। इन्द्र उनका धन लेकर गृहस्थ धर्मी भृगुको देता है। एतरेय ब्राह्मणमें भी 'यतीन् सातावृकेभ्यः प्राच्छयत्' ऐ. ब्रा. यतियोंके टुकडे करके जंगली हिंसक पशुओंको खानेके लिये दिये, ऐसा इन्द्रका वर्णन है। इसका तात्पर्य यही है कि वैदिक कर्ममें तीन ही आश्रम हैं, संन्यास यह चतुर्थ आश्रम नहीं है।

यं देवासोऽवथ वाजसातौ
यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिं
अरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये॥ ऋ. १०।६३।१४

हे (देवासः) देवो! (वाजसातौ यं अवथ) अन्नकी प्राप्तिके लिये होनेवाले युद्धमें तुम जिसकी सुरक्षा करते हो (हिते धने) युद्ध छिडनेपर (शूरसाताः मरुतः) शूरता करनेवाले वीर मरुत (यं) जिसका रक्षण करते हैं उस (सानसिं) सुन्दर (अ-रिष्यन्तं) विनष्ट न होनेवाले (प्रातः यावाणं रथं) प्रातः काल जानेवाले रथपर (स्वस्तये आरुहेम) अपने कल्याणके लिये हम चढते हैं।

इस प्रकार 'धन, महाधन' इन पदोंका अर्थ वेदमें युद्ध है। 'धने हिते' का अर्थ युद्ध शुरू होनेपर ऐसा भी है और धनके उद्देश्यसे कर्म शुरू होनेपर ऐसा भी अर्थ होनेकी संभावना है। युद्धमें विजय हुआ तो शत्रुका राज्य भी अपने आधीन हो जाता हैं, शत्रुके धन, धान्य, अलंकार, गौवें, घोडे, घर आदिकी प्राप्ति हो जाती है। यह 'धने, महाधने' पदोंका भाव है।

६ भरे

'भरे' अथवा 'भर' पद निघण्टुमें युद्ध नामोंमें आया है। 'भरे' का अर्थ भरना, भर देना। शत्रुका पराजय करके उसका धन लाकर अपने घरमें भर देना यह भाव इस पदमें है।

भरेषु हव्यः। ऋ. १।१००।१; २।२३।१३

'युद्धोंमें सहायतार्थ बुलाने योग्य इन्द्र है।' तथा और देखिये—

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्॥ ऋ. १०।६३।९

(भरेषु) युद्धोंमें (सुहवं) बुलाने योग्य (अंहो मुचं) पाप दूर करनेवाले (सुकृतं) उत्तम कार्य करनेवाले (दैव्यं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनं इन्द्रं) दिव्य जन इन्द्रको (हवामहे) हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं ।

भरे भरे अनुमदेम जिष्णुम् । ऋ. १०।६७।९; अथर्व. २०।९१।९

हम प्रत्येक युद्धमें विजयी वीरको आनन्दित करते हैं । तथा—

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकं
अंशं उदवा भरे भरे ।। ऋ. १।१०२।४; अथर्व. ७।५२।४

(त्वया युजा वयं जयेम) तेरे साथ रहकर हम विजय प्राप्त करें । (भरे भरे) प्रत्येक युद्धमें (अस्माकं अंशं उदव) हमारे भागको तूं ऊंचा करके सुरक्षित रख ।

भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति । ऋ. १।१००।२

' प्रत्येक युद्धमें वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र बलवान् होता है । '

भरे भरे नो यशसावविष्टाम् । ऋ. ५।४३।२

' प्रत्येक युद्धमें हमें सुयश प्राप्त हो । '

भरे भरे पुरो योधा भवतम् । ऋ. ७।८२।९

प्रत्येक युद्धमें अग्रभागमें रहकर युद्ध करनेवाले हो जाओ। इस प्रकार ' भरे भरे ' का अर्थ वेदमंत्रोंमें युद्ध है । इससे सिद्ध होता है कि युद्धमें विजय पानेवाले वीरोंके घर धनसे भरपूर भर जाते हैं ।

७ आक्रन्दे

' आक्रन्द ' का मूल धात्वर्थ ' रोना, पुकारना, शोक करना ' है युद्धमें जिनके वीर मारे जाते हैं, उनके रिश्तेदार रोते हैं, वे शोक करते हैं । पराजितोंको रोना पडता है । युध्यमान राष्ट्रोंको कष्ट पहुंचते हैं, इस कारण युद्धका नाम ही ' आक्रन्द ' हो गया है । इसलिये युद्ध न हो ऐसा यत्न करना चाहिये । क्योंकि युद्धसे शोक ही करना पडता है । विजय मिलने पर भी युद्धमें उनके कई वीर मरे होते हैं । इसलिये आक्रन्दन दोनों ओर होता है । युद्धका नाम ' आक्रन्द ' रख कर वेदने यह सत्य सिद्धान्त जगत्के सामने रखा है कि युद्धके विजेता और पराभूत दोनों पक्षोंमें ' आक्रन्दन ' अर्थात् ' रोना ' होता ही हैं ।

युद्धमें वीर पुकार पुकार कर शत्रु पक्षके वीरोंको आह्वान देते है, इसलिये भी ' आक्रन्द ' नाम युद्धको मिला होगा। अब इसके प्रयोग मंत्रमें देखिये—

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा
पृथिवि कृणोतु । अथर्व १२।१।४१

(यस्यां भूम्यां) जिस मातृभूमि पर (मर्त्याः) मनुष्य उच्च स्वरसे गाते और नाचते हैं, (यस्यां दुन्दुभिः वदति) जिस मातृभूमिमें ढोल बजते हैं और (यस्यां आक्रन्दः युध्यन्ते) जिसमें बडी घोषणा करके वीर लोग युद्ध करते हैं (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (सपत्नान् प्रणुदतां) शत्रुओंको दूर करे (मा असपत्नं कृणोतु) और मुझे शत्रुरहित करे ।

इस तरह यह ' आक्रंद ' पद युद्धके लिये वेदमंत्रमें प्रयुक्त होता है ।

८ आहवे

' आहव ' पदका अर्थ ' आह्वान करना, बुलाना, युद्ध के लिये बुलाना, युद्ध करना ' ऐसा है । युद्धके अर्थमें यह पद वेदमें आता है । युद्ध करनेके लिये किसीने बुलाया तो अपनी तैयारी चाहिये । इसका प्रयोग देखिये—

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः
चक्रं न वृत्तं व्यतीरँवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिः
युवाऽकुमारः प्रत्येत्याहवम् । ऋ. १।१५५।६

' चार और नब्बे नामोंके साथ चक्र जैसा अपने घेरेमें घूमता है वह सूर्य (बृहच्छरीरः) बडे शरीरवाला (ऋक्वभिः विमिमानः) स्तुतियोंसे संमानित होकर (युवा अकुमारः) तरुण और कुमारसे बडा (आहवं प्रति एति) जहां आह्वान होता है वहां जाता है, युद्ध होता है वहां पंहुचता है ।

' आहवं प्रति एति ' जहांसे आह्वान होता है वहां पहुंचता है, तथा और देखिये—

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं
निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत
उग्रस्य चिद् दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ऋ. २।२३।११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

' (अनानुदः वृषभः) अनुपम बलवान् वीर (आहवं जग्मिः) युद्धमें जानेवाला (शत्रुं निष्टप्ता) शत्रुका विनाशक (पृतनासु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला, हे ब्रह्मणस्पते ! तू (सत्यः ऋणया असि) सच्चा ऋण चुकानेवाला है। (वीळुहर्षिणः उग्रस्य दमिता) बलके कारण हर्षित होनेवाले विशेष शूर शत्रुका दमन करनेवाला तू है। '

इसमें ' आहवं जग्मिः ' युद्धका आह्वान होनेपर युद्धमें जानेवाला यह ब्रह्मणस्पति है। तथा—

इन्द्रं न कश्चन् सहते आहवेषु ॥ ऋ. ६।४७।१;
अथर्व. १८।१।४८

' इन्द्रकी शक्तिको कोई शत्रु युद्धमें सहन नहीं कर सकता। ' इतना सामर्थ्य युद्धोंमें इन्द्र दिखाता है।

इस प्रकार ' आहव ' पद वेदमें युद्धके अर्थमें आता है।

९ नदनुः

' नदनु ' का अर्थ वेदमें युद्ध है। निघण्टुमें युद्ध नामोंमें इस पदका पाठ किया है। कोशोंमें इसके ये अर्थ दिये हैं। ' सिंह गर्जना, स्तुतिके शब्द, मेघ, युद्ध, संग्राम ' वेदमें यह पद युद्ध अर्थमें ही आता है—

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव
हूयसे। ऋ. ८।२१।१४; अथर्व. २०।११४।२

' (यदा) जब तू (नदनुं कृणोषि) युद्ध करता है तब तू (सं ऊहसि) उत्तम विचार करके जो करना होगा वह करता है इस लिये (पिता इव हूयसे) रक्षक पिताके समान तू प्रशंसित होता है। ' तथा और एक मंत्र देखिये—

स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा
तुविमृक्षो नदनुमान् ऋजीषी।
बृहद्रेणुः च्यवनो मानुषीणां
एकः कृष्टीनां अभवत् सहावा ॥ ऋ. ६।१८।२

' वह इन्द्र (युध्मः) युद्ध करनेवाला, (सत्वा) बलवान् (खजकृत्) संग्राम करनेवाला, (समद्वा) संग्राममें यशस्वी, (तुविमृक्षः) शुद्धता करनेवाला, (नदनु-मान्) युद्धकी घोषणा करनेवाला (ऋजिषी) सोमरस पीनेवाला, (बृहद् रेणुः) युद्धोंमें बडी धूली उडानेवाला, (मानुषीणां च्यवनः) मानवी सेनाको स्थानभ्रष्ट करनेवाला (कृष्टीनां) मानवोंका (एकः सहावान् अभवत्) एक बलवान सहायक होता है। '

' नदनु ' शब्दका प्रयोग वेदमें अधिक नहीं है।

१० संगम

' संगम ' शब्दका अर्थ ' मिलना ' है। युद्धमें दो शत्रुओंका युद्ध करनेके लिये एक स्थान पर मिलना इस अर्थमें यह पद वेदमें ' युद्धके अर्थमें ' प्रयुक्त होता है। निघण्टुमें यह पद युद्ध अर्थमें रखा है। देखिये—

तस्मा रथं मघवन् प्राव सातये
जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ॥ ऋ. १।१०२।३

' (संगमे) युद्धमें तुम्हारे (यं जैत्रं तं रथं) जिस विजयी रथको देखकर (अनुमदाम) हम आनंदित होते हैं उस रथको लेकर तुम हमारे समीप आ जाओ। ' तथा—

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता
ऽदेव इन्द्र युधये चिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवः
त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे ॥ ऋ. १०।३८।३

(यः दास आर्यः अदेवः) जो दास आर्य अथवा देवके सिवाय दूसरा शत्रु हमसे (युधये चिकेतति) युद्ध करनेकी इच्छा करता है, हे (पुरु-स्तुत इन्द्र) बहु प्रशंसित इन्द्र ! (ते शत्रवः) वे शत्रु (अस्माभिः सुसहाः सन्तु) हमारे लिये सहन करने योग्य हों, अर्थात् हम उनका सहज पराभव कर सकें (त्वया वयं तान् संगमे वनुयाम) तेरे साथ रहकर हम उनको युद्धमें विनष्ट कर सकें। ' तथा—

श्रवो विविदे संगमेषु ॥ ऋ. १०।१३१।३,
अथर्व. २०।१२५।३

' (संगमेषु) युद्धोंमें विजय और यश प्राप्त होता है। ' युद्धके अर्थमें ' संगम ' पदके प्रयोग वेद मंत्रोंमें ये हैं।

११ संगे

' संग ' पदका अर्थ ' मिलना, मित्रतासे एकत्रित होना ' है। यह पद पुल्लिंगमें ' संगः ' ऐसा होता है, और नपुंसकलिंगमें ' संग ' ऐसा होता है। नपुंसकलिंगके ' संग ' पदका अर्थ ' मारना, शत्रुका वध करना ' है। इस कारण यह पद निघण्टुमें युद्धके नामोंमें आया है। इस पदका प्रयोग नीचे दिये मंत्रोंमें आया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आ न इन्द्रो दूरादा न आसाद्
अभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः
संगे समत्सु तुर्वणिः प्रतन्यून् ॥
ऋ. ४।२०।१;वा.य. २०।४८

'(अभिष्टिकृत् उग्रः) सहायता करनेवाला उग्र वीर इन्द्र (अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये (दूरात् नः आसाद् नः आ यासत्) दूरसे और समीपसे भी हमारे पास आ जाय। (नृपतिः वज्रबाहुः) मनुष्योंका पालक वज्रके समान कठोर बाहुवाला और (संगे समत्सु) युद्धमें तथा संघर्षोंमें (पृतन्यून् तुर्वणिः) सैनिकोंका वध करनेवाला इन्द्र (ओजिष्ठेभिः) बलवान सैनिकोंके साथ हमारे पास आजाय।'

प्रो ष्वस्मै पुरोरथं इन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहा
अस्माकं बोधि चोदिता ॥
ऋ. १०।१३३।१, अथर्व २०।९५।२

(अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (पुरोरथं शूषं प्रसु अर्चत) उसके रथको आगे बढानेवाला स्तोत्र उत्तम रीतिसे गावो। (अभीके लोककृत्) पासके युद्धमें स्थान बनानेवाला (संगे समत्सु वृत्रहा) युद्धमें तथा संघर्षोंमें वृत्रनाशक इन्द्र (अस्माकं चोदिता बोधि) हमारा प्रेरक होवे।'

इस प्रकार 'संगे' पद युद्धवाचक वेदमें है।

१२ संगथे

'संगथे' पद युद्धवाचक निघण्टुमें आया है। इसके मंत्र ये हैं—

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥
ऋ. १।९१।१६ वा. य. १२।११२

'(आप्यायस्व) तू बलवान बन। हे सोम! (ते विश्वतः वृष्ण्यं समेतु) तुझे चारों ओरसे सामर्थ्य प्राप्त हो। (वाजस्य संगथे भव) तू सामर्थ्यके युद्धमें खडा रह।'

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं
नरा शंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां
प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ ऋ. २।३८।१०

(भगं धियं पुरंधिं वाजयन्तः) भाग्ययुक्त बुद्धिमान पुररक्षकको हम अधिक बलवान करते हैं, (नराशंसः ग्नास्पतिः नो अव्याः) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, दैवी शक्तियोंका स्वामी हमारा रक्षण करे।

(वामस्य आये संगथे) धनके लिये आवश्यक हुए युद्धमें (सवितुः देवस्य प्रियाः स्याम) सविता देवके प्रिय होकर हम रहें'।

'संगथे' पदके युद्ध अर्थमें वेदमें ये प्रयोग हैं। 'संगथे' पदका अर्थ 'समागम, संगति, मेलमिलाप' ऐसा है। मेलमिलाप होनेके पश्चात् इस मेलमिलापमें विरोध पैदा होता है, जिससे मतभेद उत्पन्न होनेसे उसीमेंसे युद्ध शुरू होता है। इस कारण 'संगथे' पद युद्धवाचक माना गया है।

१३ समिथे

'समिथ' पद 'युद्ध, संमेलन, अग्नि, आहुति' इन अर्थोंमें है। निघण्टुमें यह युद्ध नामोंमें रखा है। इसका प्रयोग वेदमन्त्रोंमें दीखता है, इसके उदाहरण ये हैं—

स इन् महानि समिथानि कृणोति
युध्म ओजसा जनेभ्यः ॥ ऋ. १।५५।५

(स इत् युध्मः) वह इन्द्र युद्ध करनेवाला है, वह (जनेभ्यः) लोगोंके हितके लिये (ओजसा मज्मना) अपने बडे सामर्थ्यसे (महानि समिथानि) बडे युद्ध (कृणोति) करता है'।

स हि वाजी समिथे ब्रह्मणस्पति ॥ ऋ. २।२४।११

वह ब्रह्मणस्पति (समिथे वाजी) युद्ध करनेमें बलवान है।

नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ
ववन्दिरे पृथिवी वेविदानाः ॥ ऋ. ३।५४।४

'हे (पृथिवि) हे मातृभूमे। (शूरसातौ समिथे) शूर लोगोंके द्वारा चलाये युद्धमें (वेविदानाः नरः वां ववन्दिरे) ज्ञानी नेता लोग तुम्हें वंदन करते हैं।'

जेषाम समिथे त्वोतयः ॥ ऋ. ९।७६।५

(समिथे) युद्धमें (त्वा-ऊतयः) तेरे संरक्षणसे सुरक्षित हुए हम (जेषाम) जीतें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सनेम वाजं समिथेषु अर्यः ॥ ऋ. १।७३।५

(समीथेषु) युद्धोंमें (अर्यः वाजं सनेम) शत्रुसे धन प्राप्त करें। यहां स्पष्ट कहा है कि 'अर्यः वाजं सनेम' शत्रुसे धन प्राप्त करें। अर्थात् युद्धमें विजय मिलने पर जो शत्रुके धनकी लूट की जाती है, वही यह धन है।

शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्
वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ऋ. ४।२०।८

हे इन्द्र! तू (शिक्षानरः) लोगोंको मार्ग बतानेवाला है, (समिथेषु प्रहावान) युद्धोंमें शत्रुपर प्रहार करनेवाला है। (भूरिवस्वः राशिं) बडी धनकी राशीको (अभिनेता असि) देनेवाला है।

स हन्ति वृत्रा समिथेषु। ऋ. ४।४५।२

वह युद्धोंमें वृत्रोंको मारता है। तथा और देखिये—

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते ॥ ऋ. ७।८३।९

(अन्यः) दोनोंमेंसे एक वीर (समिथेषु) युद्धोंमें वृत्रोंको मारता है।

दिधुं यदस्य समिथेषु मंहयन्। ऋ. १०।४८।२

(अस्य दिधुं) इसका तेजस्वी वज्र (समिथेषु मंहयन्) युद्धोंमें बडा महत्त्व प्राप्त करता है।

इस प्रकार 'समिथ' पद वेदोंमें युद्ध वाचक है।

१४ समर्ये

'समर' पद युद्ध वाचक सुप्रसिद्ध है। निघण्टुमें युद्ध वाचक पदोंमें इसका पाठ है। इसके ये मंत्र है—

वयमग्ने वनुयाम त्वोता
वसूयवो हविषा बुध्यमानाः।
वयं समर्ये विदथेषु अह्नां
वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ऋ. ५।३।६

हे अग्ने! (वसूयवः वयं) धनकी इच्छा करनेवाले हम (हविषा बुध्यमानाः) हविसे तुझे प्रदीप्त करके (त्वा-ऊताः वनुयाम) तेरेसे संरक्षित होकर हम धन प्राप्त करें। (समर्ये) युद्धमें विजयसे तथा (विदथेषु राया) यज्ञोंमें धनसे युक्त हों। और हे (सहसः पुत्र) बलके पुत्र अग्ने! (मर्तान्) नौकर चाकर भी प्राप्त करें।

त्वं हि त्यदिन्द्र कुत्समावः
शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ॥ ऋ. ७।१९।२;
अथर्व. २०।३७।२

(त्वं तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की'।

इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ॥ ऋ. ७।२३।१,
अथर्व २०।१२।१

हे वसिष्ठ! युद्धमें इन्द्रके महत्वका वर्णन कर।

इस प्रकार 'समर्य' पद वेदमंत्रोंमें युद्धवाचक आया है।

१५ सङ्काः

'सङ्काः' पद निघण्टुमें युद्धवाचक करके दिया है। इसका प्रयोग एक ही वार ऋग्वेदमें दीखता है। वह मंत्र यह है—

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः
चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्का पृतनाश्च सर्वा
पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ऋ. ६।७५।५

(बह्वीनां पिता) वह तर्कस बहुत बाणोंका पिता है, अर्थात् इस तर्कसमें बहुत बाण रहते हैं, इसलिये (अस्य बहुपुत्रः) इसके बहुत पुत्र हैं। बाण ये तर्कसके पुत्र हैं। यह बाण (समनावगत्य) युद्धमें जाकर (चिश्चा करोति) चिश्चा ऐसा शब्द करता है, (पृष्ठे निबद्धः) पीठ पर बंधा हुआ यह (इषुधिः) तर्कस (प्रसूतः) बाणको बाहर फेंक कर, बाणोंको प्रसूत करके (सङ्काः सर्वाः पृतनाः च जयति) सब प्रकारके युद्ध और सब सेनाओंको जीतता है।

इस मंत्रमें 'सङ्का' पद युद्धवाचक आया है। सब वेदोंमें इस पदका प्रयोग एक ही बार हुआ है। इषुधि, बाण आदिके साथ 'सङ्का' पद युद्धवाचक है इसमें संदेह नहीं है।

१६ समनम्

'समनं' पद निघण्टुमें युद्धवाचक करके दिया है। 'स-मनं' पदका अर्थ 'मनका विचार एक करके कार्य करना'। सबका एक विचार, अधिकसे अधिक एकताका विचार, युद्धके कार्यके लिये ही करना पडता है, इसलिये इस पदका अर्थ युद्ध हुआ है। इसके उदाहरण ये हैं—

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं
प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन्
ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ऋ. ६।७५।३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'(इयं ज्या) यह धनुष्यकी डोरी (समने) युद्धमें (धन्वन् अधि) धनुष्य पर (विततां) फैली हुई (पारयन्ती) पार पंहुचाती है (प्रियं वक्ष्यन्ती इव) प्रिय भाषण करनेके लिये (कर्णं आगनीगन्ति) कानके पास आती है (योषा सखायं इव) स्त्री जैसी अपने पतिके पास (परिषस्वजाना शिङ्क्ते) आलिंगन देकर बोलती है।'

इसमें 'समने' पदका अर्थ युद्ध है। युद्धमें धनुष्यकी डोरी कानके पास आती है, और प्रिय स्त्री आलिंगन देकर कानमें कुछ गुप्त बात कहती है ऐसा दीखता है।

१७ समत्सु

'समत्सु' यह पद निघण्टुमें युद्धके नामोंमें आया है। कोशोंमें भी 'समत्सु' ऐसा पद नहीं है। पर वेदमें तथा निघण्टुमें वह है इसके उदाहरण वेदमें हैं, देखिये—

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गायत॥
ऋ. १।५।४; अथर्व २०।६९।२

'(यस्य संस्थे हरी) जिसके रथमें जोते दो घोडे देखकर (समत्सु शत्रवः न वृण्वते) युद्धोंमें शत्रु नहीं ठहर सकते, (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके स्तोत्र गावो'। तथा—

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रं ऊतये समत्सु
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥
ऋ. ३।३०।२२; अथर्व २०।११।११

(शुनं मघवानं इन्द्रं हुवेम) उत्साही धनवान इन्द्रकी हम प्रशंसा गाते हैं, (अस्मिन् वाजसातौ भरे नृतमं इन्द्रं) इस अन्नका लाभ कर देनेवाले संग्राममें जो अत्यंत श्रेष्ठ नेता है उस इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं। (शृण्वन्तं उग्रं) हमारी प्रार्थना सुननेवाला वह उग्रवीर (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाला और (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाला है'।

इस रीतिसे 'समत्सु' पद युद्धवाचक वेदमें है।

१८ पृतनाः

'पृतनाः' पदका अर्थ 'सैन्य, सेनापथक, युद्ध, संग्राम' आदि है।

सोमापूषणौ अवतं धियं मे
युवाभ्यां विश्वा पृतना जयेम॥ ऋ. २।४०।५

हे सोम और पूषा! (मे धियं अवतं) मेरे बुद्धिपूर्वक किये कर्मकी सुरक्षा करो। (युवाभ्यां) तुम दोनोंसे सुरक्षित हुए हम (विश्वाः पृतनाः जयेम) सब संग्रामोंमें शत्रुओंको जीतें।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य॥
ऋ. ३।२४।१

हे अग्ने! (अभिमातीः पृतनाः) शत्रुकी सेनाको युद्ध क्षेत्रमेंसे (अपास्य सहस्व) दूर हटा कर उसका पराभव कर।

त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम। अथर्व ५।३।१

तेरे अध्यक्ष होनेपर सब शत्रुसेनाके ऊपर हम विजय प्राप्त करें।

इस तरह 'पृतनाः' पद सैनिकों तथा युद्धोंके लिये वेदमें आता है।

१९ पृत्सु

'पृत' का अर्थ 'सेना, सैनिक गण, सैन्य' है। 'पृत्सु' का अर्थ 'सेनामें, सैनिकोंमें, सेना विभागोंमें' ऐसा है। सैनिकोंमें रहना युद्धकी तैयारीसे रहना है, इस कारण 'पृत्सु' का अर्थ वेदमें तथा निघण्टुमें 'युद्ध' हुआ है।

यमग्ने पृत्सु मर्त्य अवा वाजेषु यं जुनाः।
स यन्ता शश्वतीः इषः॥ ऋ. १।२७।७; वा. य. ६।२९

'हे अग्ने! (यं मर्त्यं) जिस मानवको तू (पृत्सु अवाः) युद्धोंमें सुरक्षित रखता है, तथा (वाजेषु यं जुनाः) युद्धोंमें जिसको प्रेरित करता है, (सः शश्वती इषः यन्ता) वह शाश्वत अन्नोंका नियमन करता है।' तथा—

आनो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्।
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्॥ ऋ. १।७९।८

हे अग्ने! (सत्रासाहं) दारिद्र्यका नाश करनेवाला (वरेण्यं) श्रेष्ठ (रयिं नः आभर) धन हमें दे दो। जो धन (विश्वासु पृत्सु दुष्टरं) सब प्रकारकी लडाइयोंमें शत्रु के द्वारा छीननेके लिये अशक्य है।

इस प्रकार 'पृत्सु' पदका अर्थ वेदमंत्रोंमें 'युद्ध' है।

२० स्पृधः

'स्पृध' धातुका अर्थ स्पर्धा करना है। स्पर्धा करनेवाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शत्रु होता है और शत्रुसे युद्ध होता है, इस कारण 'स्पृधः' का अर्थ 'युद्ध' है इसके वेदमें ये प्रयोग हैं—

जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ऋ. १।८।३;
अथर्व २०।७०।१९

'स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें हम विजय प्राप्त करें'।

अभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः। ऋ. १।१७४।५

'(वज्रबाहुः) वज्रके समान जिसके बाहु है वह इन्द्र (स्पृधः) युद्धमें (अभि यासिषद्) आगे बढे।

विश्वा यदजय स्पृधः। अथर्व २०।२९।३

'तूने सारे युद्धोंको जीत लिया।' इस तरह 'स्पृधः' पद वेदोंमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धका वाचक है।

२१ मृधः

'मृधः' पद शत्रुके अर्थमें वेदमें आता है। निघण्टुमें इसका पाठ युद्ध नामोंमें किया है। कोशोंमें यह पद 'शत्रु' अर्थमें है। शत्रुसे ही युद्ध होता है इसलिये यह पद युद्ध वाचक बना है, इसके उदाहरण ये हैं—

जहि शत्रूँ अप मृधो नुदस्व
अथ अभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ ऋ. ३।४७।२

(शत्रून् जहि) शत्रुओंका पराभव कर (मृधः अप नुदस्व) शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धोंमें उनको दूर कर। (अथ) पश्चात् (नः विश्वतः अभयं कृणुहि) हमारे लिये सब ओरसे निर्भयता कर।

'मृध्' धातुका अर्थ 'हिंसा करना, मारना' है इस कारण इसका अर्थ 'युद्ध, शत्रुनाश' आदि है।

२२ रणः

'रण' का अर्थ 'युद्ध' प्रसिद्ध है। 'रण्' धातु इस पदमें युद्ध करनेके अर्थमें है, उसके प्रयोग ये हैं—

धनंजयो रणे रणे। ऋ. १।७४।३

अयं रणाय ते सुतः। ऋ. ८।१७।१२

'प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला यह है। यह तेरा पुत्र युद्धके लिये ही उत्पन्न हुआ है।

२३ विखादः

'विखाद' पद युद्ध नामोंमें पठित है। इसका उदाहरण यह है—

तं विखादे सन्नि अद्य श्रुतं
नरं अर्वाञ्चं इन्द्रमवसे करामहे ॥ ऋ. १०।३८।४

(तं सन्नि श्रुतं नरं इन्द्रं) उस शूर अति प्रसिद्ध नेता इन्द्रको (अद्य विखादे) आज होनेवाले युद्धमें (अवसे अर्वाञ्चं करामहे) अपने संरक्षणके लिये अपने पास बुलाते हैं।

चारों वेदोंमें इसी एक मंत्रमें यह पद एक ही बार आया है।

२४ आजौ-आजिः

'आजि' पद युद्ध वाचक प्रसिद्ध है। 'अज-गतौ' धातुसे यह पद 'आजि' बनता है। सैनिक शत्रुपर हमला करते हैं उस आक्रमणको 'आजि' कहते है।

इष्यामि वा वृषणो युध्यत आजौ ॥ ऋ. ८।९६।१४

'हे (वृषणः) शक्तिमान वीरो! (इष्यामि) मैं इच्छा करता हूं कि आप (आजौ युध्यत) युद्धमें संग्राम करते रहो।'

२५ पृतनाज्यम्

'पृतना-आज्यं' पद निघण्टुमें युद्धके नामोंमें पठित है। 'पृतनानां अजनात् वा पृतनाज्यं जयनात्'। (निरुक्त) सैन्योंका परस्पर संघर्ष जहां होता है, एक दूसरेसे जहां अत्यंत संघर्ष होता है उस संघर्षका नाम 'पृतनाज्य' है। 'पृतना' का अर्थ सेना और 'आज्य' का अर्थ घुसकर मारते जाना।

जघ्नथुः नरा पृतनाज्येषु ॥ ऋ. ७।९९।४

'युद्धोंमें वीर परस्परोंका नाश करते हैं।'

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः।
ऋ. ८।१२।२५

हे इन्द्र! युद्धमें सब देव तुझे आगे रखते हैं।

इस रीतिसे घोर युद्धके अर्थमें 'पृतनाज्य' पद वेदमें प्रयुक्त होता है।

२६ अभीके

'अभीके' पद 'युद्ध' अर्थमें सुप्रसिद्ध है।

आरे स्याम दुरितादभीके ॥ ऋ. ३।३९।७

(दुरितात् अभीके) पापसे होनेवाले युद्धमें हम (आरे स्याम) दूर रहें।

२७ नेमधिता

'नेमधिता, नेमधिति' इन पदोंका अर्थ 'विभाग करना, तोडना, युद्ध करना, युद्ध' आदि होता है।

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते ॥ ऋ. ७।२७।१

(नरः) नेता लोग (नेमधिता) युद्धके समय इन्द्रको बुलाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नेमधिता न पौंस्या ॥ ऋ. १०।९३।१३

'युद्ध करनेवाले वीर जैसे बलवान् होते हैं।' इस प्रकार नेमधिता पदके वेदमंत्रोंमें प्रयोग हैं।

२८ मीळ्हे

'मीळ्हे' पद युद्धके नामोंमें निघण्टुमें आया है। 'मीढ' का अर्थ युद्ध है, उसीका यह वैदिक रूप दीखता है।

मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ॥ ऋ. ९।१०६।१२

(मीळ्हे) युद्धमें (सप्तिः न) घोडा जैसा (वाजयुः) बल बढाता है।

२९ समरणे

'समर' पद युद्ध वाचक है, वही 'समरणे' हो गया है इसका उदाहरण यह है—

मा नः समरणे वधीः। ऋ. १।१७०।२

मा वृताः समरणे हवन्ते। ऋ. ४।४२।५

युद्धमें हमारा वध न कर। युद्धमें शत्रुसे घेरे गये वीर सहाय्यार्थ मुझे ही बुलाते हैं।

३० समोहे

'समोहे' पदका पाठ निघण्टुमें युद्धनामोंमें किया है। 'समूह' का अर्थ 'संगठन, एकत्रीकरण, समूह बनाना' है। ऐसे समूह बने, तो दो समूहोंमें मतभेद हुआ, तो युद्ध होता है। इस कारण 'समोहे' पद युद्धवाचक हुआ है।

समोहे वा य आशत नरः तोकस्य सनिता।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ऋ. १।८।६;
अथर्व. २०।७१।२

(धियायवः विप्रासः) बुद्धिमान ज्ञानी (नरः) नेता वीर (तोकस्य सनितौ) पुत्रके उत्सवमें अथवा (समोहे वा ये आशत) युद्धमें जो इकट्ठे होते हैं।

इयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ॥ ऋ. ४।१७।१३

'इन्द्र युद्धमें, अपने सैन्यकी चढाईके कारण, धूली उडाता है।' इस तरह 'समोहे' पद युद्ध अर्थमें वेदके मंत्रोंमें प्रयुक्त हुआ दीखता है।

३१ वृत्रतूर्ये

'वृत्रतूर्ये' पद वेदमंत्रोंमें युद्धके अर्थमें आता है। 'तूर' धातुका अर्थ 'मारना, काटना' आदि है। 'वृत्रतूर्य' का अर्थ 'वृत्र' को मारना है, वृत्रके साथ युद्ध करना है देखिये—

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये। ऋ. २।२६।२

'वृत्रके साथ जो लडाई हो उसमें अपने मनमें शुभ विचार युक्त रखो।

३२ पृक्षे

'पृक्ष' पद अन्नवाचक है। अन्नके लिये जो युद्ध होता है वह 'पृक्ष' कहलाता है।

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे। ऋ. २।३४।४

'युद्धके समय उन सब भुवनोंको तुम आश्रय देते हो।'

३३ आणौ

'आणि' का अर्थ तलवार है। युद्धमें तलवारका उपयोग होता है इसलिये 'आणौ' का अर्थ युद्ध हुआ है।

आणौ कुत्साय द्युमते सचाहन्। ऋ. १।६३।३

'युद्धमें तेजस्वी कुत्सका हित करनेके लिये शत्रुको मारा।'

३४ शूरसातौ

'शूर-सातौ' शूर पुरुषोंका जहां समर्पण होता है, शूरोंके जीवन जहां समर्पित होते हैं, वह युद्ध ही होता है।

त्वां हि इन्द्र अवसे विवाचो।
हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ॥ ऋ. ६।३३।२

हे इन्द्र! (त्वां हि) तुझे ही (विवाचः चर्षणयः) विरुद्ध वचन बोलनेवाले लोग (शूरसातौ अवसे हवन्ते) युद्धमें संरक्षणके लिये बुलाते हैं।

३५ वाजसातौ

'वाज-सातौ' का अर्थ 'युद्ध' है। 'वाज' का अर्थ 'अन्न, जल, धन, बल, वाणी, शक्ति, यज्ञ, युद्ध, संघर्ष आदि है।

वृधे च नो भवतं वाजसातौ। ऋ. १।३४।१२

(वाजसातौ) युद्धमें आप हमारी शक्ति बढानेमें सहायता कीजिये।

वाजेभिः नो वाजसातौ अविड्ढि। ऋ. १।११०।९

(वाजसातौ) युद्धमें (वाजेभिः) अपने बलोंके साथ (नः अविड्ढि) हमारी सहायता कर।

भुवः सखाऽवृको वाजसातौ। ऋ. ४।१६।१८

'युद्धमें हमारा अकुटिल मित्र बनो।' इस प्रकार 'वाजसातौ' पद युद्ध अर्थमें वेदमें आता है। 'अन्नके लिये युद्ध, धनके लिये युद्ध' ये 'वाजसातौ' के अर्थ हैं।

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३६ समनीके

' अनीक पद सैन्यवाचक है, (सं-अनीकं) जहां सैन्य एक दूसरेके साथ लडते भिडते हैं, उस समय युद्ध होता है, इस कारण (सं-अनीके) ' समनीके ' पद युद्ध-वाचक हुआ है।

भोजं देवासो अवता भरेषु
भोजः शत्रून् त्समनीकेषु जेता ॥ ऋ. १०।१०७।१

' (भरेषु देवासः भोजं अवत) युद्धोंमें देव उदार-वीरका संरक्षण करे। (भोजः समनीकेषु शत्रून् जेता) उदारवीर युद्धोंमें शत्रुपर विजय प्राप्त करते हैं '।

इस एक ही मंत्रमें इस पदका प्रयोग है।

३७ खले

' खल ' पद दुष्ट मनुष्यका वाचक है। दुष्टसे ही युद्ध होता है। इस लिये ' खल ' पद युद्धवाचक हुआ है।

खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि ॥ ऋ. १०।४८।७

(खले पर्षान् न) पत्थरपर धान्य पटकते हैं उस तरह (खले भूरि प्रति हन्मि) युद्धमें बहुत शत्रुओंको हम मारते हैं।

' खल ' का अर्थ ' पत्थर, युद्ध, दुष्ट ' ऐसा होता है।

३८ खजे

' खज् ' धातुका अर्थ ' हलचल करना ' है। विशेष हलचल युद्धमें होती है इसलिये युद्धका अर्थ इस पदसे लिया जाता है।

स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा। ऋ. ६।१८।२
शतं ऊति खजं करः। ऋ. १।१०२।६

वह युद्ध करनेमें कुशल, बलवान्, संग्राम करनेवाला, वह सैंकडों प्रकारसे हमारा संरक्षक बने।

३९ पौंस्ये

' पौंस्य ' का अर्थ ' पुरुषत्व, बल, सामर्थ्य, युद्ध ' है। पुरुषत्वसे युद्ध होता है इसलिये यह पद युद्धवाचक हुआ है।

स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या
अभिक्रत्वा नर्यः पौंस्यैः च ॥ अथर्व. २०।७६।७

(स नर्यः) वह मनुष्योंमें श्रेष्ठवीर (पौंस्यैः) युद्धके कर्मोंसे पृथिवी पर बडा हुआ है।

४० वाजे

' वाज ' पद बलवाचक है। बलसे ही युद्ध होते हैं इस कारण इसका अर्थ ' युद्ध ' हुआ है। निघण्टुमें यह पद युद्धके अर्थमें दिया है देखिये—

ऊर्ध्वः तिष्ठ न ऊतये
ऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ॥ ऋ. १।३०।६;
अथर्व. २०।४५।३

हे (शतक्रतो) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (अस्मिन् वाजे) इस युद्धमें (नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ) हमारी रक्षाके लिये खडा रह।

अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान्। ऋ. ५।४।६

हे (नृतम अग्ने) वीरोंमें श्रेष्ठ अग्ने। (वाजे अस्मान् पाहि) युद्धमें हमारा संरक्षण कर।

वाजे वाजे हवामहे सखाय इन्द्रं ऊतये।
अथर्व. १९।२४।७

प्रत्येक युद्धमें इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

स वाजेषु नो अविष्यत् ॥ अथ. २०।५६।१

वह युद्धोंमें हमारा संरक्षण करता है।

इस प्रकार ' वाज ' पद वेदमंत्रोंमें युद्धवाचक है।

४१ अज्म

' अज्म ' पद निघण्टुमें युद्धवाचक है। इस में ' अज् ' धातु ' जाना, हमला करना ' अर्थमें है। ' अज्मन् ' पदका अर्थ ' गौ, हमला, युद्ध ' है। उदाहरण ये हैं—

येषां अज्मेषु पृथिवी··· भिया यामेषु रेजते।
ऋ. १।३७।८

जिनके युद्धोंमें भूमि हमला होनेके समय कांपती है।

जयन्तं अज्म। ऋ. १०।१०३६; अथर्व. ६।९७।३

युद्धमें जीतनेवाला इन्द्र है। इन उदाहरणोंमें ' अज्म ' पद युद्ध वाचक है।

४२ सद्म

' सद्म ' पदमें ' सद् ' धातु ' बैठना, निवास करना ' अर्थमें है। अपने निवास स्थानपर शत्रु हमला करते हैं उस समय युद्ध करना पडता है, इस कारण घरवाचक ' सद्म ' पद युद्धवाचक हुआ है, देखिये—

अध स्वनान्मरुतां विश्वं आ सद्म पार्थिवम्।
अरेजन्त प्रमानुषाः ॥ ऋ. १।३८।१०

(विश्वं पार्थिवं सद्म) सब पृथिवी परके युद्धमें (मरुतां स्वनात्) मरुतोंके शब्दसे (मानुषाः प्र आ अरेजन्त) मनुष्य कांपने लगते हैं। ' सद्म ' पदका अर्थ वेदमें बहुत स्थानों पर ' घर, निवास स्थान ' ऐसा भी है और कहीं ' युद्ध ' ऐसा भी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४३ संयत्

'सं-यत्' का अर्थ 'मिलना, संगठन करना, पंक्तिमें खडा रहना, युद्धकी तैयारीसे रहना' आदि है। 'युद्धमें एक पंक्तिमें जैसे वीर खडे रहते हैं उसका भाव 'सं-यत्' पद बताता है। इसके उदाहरण ये हैं—

अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं
वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ऋ. २।४।८

हे अग्ने! (अस्मे) हमको (संयद्-वीरं) युद्धमें वीरताका कार्य करनेवाला (बृहन्तं वाजं) बडा बलवान् (सु-अपत्यं) जिसके साथ उत्तम संतान हो ऐसा (रयिं दाः) धन हमें दे दो।

उभे वृतौ संयती संजयाति। ऋ. ५।३७।५

'दोनों समय वह युद्धमें जीतता है।

इस तरह वेदमंत्रोंमें ४३ प्रकार युद्धके वर्णन किये हैं। युद्धके इतने नाम हैं। ये नाम बताते हैं कि इतने युद्धके प्रकार हैं यह वेदके मंत्रोंमें निश्चित हुआ था।

निघण्टुमें 'संयुगे, समिति, संख्य, संवत' ये पद युद्धके अर्थमें लिखे हैं, पर इनके मंत्र वेदमें नहीं मिलते इसलिये ये पद यहां नहीं लिये हैं। अर्थात् निघण्टुमें ४७ युद्धनाम दिये हैं। वेद मंत्रोंमें हमें ४३ पद मिले। अतः ये चार पद हैं जिनके मंत्र अन्वेषणीय हैं।

युद्धके इतने नाम वेदमें आये हैं। युद्धके इतने नाम वेदमें रहने यह भी कोई कम विचारणाका परिणाम नहीं है। इतने प्रकारके युद्ध होते हैं यह वेदमें निश्चित हुआ है। युद्धोंके इतने प्रकार निश्चित करना यह कोई कम विचारणा की बात नहीं है। मानवोंमें जितने कारणोंसे जितने प्रकारके युद्ध हो सकते हैं। वे सब प्रकार इन पदोंसे दर्शाये हैं। यह एक युद्धका संपूर्ण शास्त्र ही निश्चित सा हुआ है।

वेदमन्त्रोंमें आनेवाले युद्धके नाम

नाम	पृष्ठ		
१ मम-सत्यम्	३५७	२२ रणः	३६६
२ समीके	३५७	२३ विखादः	३६६
३ विवाक्	३५८	२४ आजौ-आजि	३६६
४ महाधन	३५८	२५ पृतना-ज्यम्	३६६
५ धन	३५९	२६ अभीके	३६६
६ अरे	३६०	२७ नेमधिता	३६६
७ आक्रन्दे	३६१	२८ मीळ्हे	३६७
८ आहवे	३६१	२९ समरणे	३६७
९ नदनुः	३६२	३० समोहे	३६७
१० संगम	३६२	३१ वृत्रतूर्ये	३६७
११ संगे	३६२	३२ पृक्षे	३६७
१२ संगथे	३६३	३३ आणौ	३६७
१३ समिथे	३६३	३४ शूरसातौ	३६७
१४ समर्ये	३६४	३५ वाजसातौ	३६७
१५ सङ्काः	३६४	३६ समनीके	३६८
१६ समनम्	३६४	३७ खले	३६८
१७ समत्सु	३६५	३८ खजे	३६८
१८ पृतनाः	३६५	३९ पौंस्ये	३६८
१९ पृत्सु	३६५	४० वाजे	३६८
२० स्पृधः	३६५	४१ अज्म	३६८
२१ मृधः	३६६	४२ सद्म	३६८
		४३ संयत्	३६९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेद-विद्याओंके अनुसन्धानकी आवश्यकता

(लेखक— श्री वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड, इन्दौर नगर)

वेदोंके प्रति हमारी उपेक्षासे आज हम अपने लक्ष्यसे बहुत दूर हो गये हैं और हमारी प्रतिज्ञाको हम भूल बैठे। 'वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है' यह हमारे वचनमें कथन मात्रमें ही रह गया है— परन्तु हमारे विश्वास और व्यवहार इससे विपरीत दिशामें बडी तेजीसे बढते जा रहे हैं। हमारे चारों ओर अवैदिक विद्याओंका, अवैदिक शिक्षा दीक्षाका और सभ्यता तथा संस्कृतिका दृढतम बन्धन बढता जा रहा है और हमें कसता जा रहा है। हमारी वैदिक सभ्यता, शिक्षा-दीक्षा एवं विद्याओंके पुनरुत्थान तथा पुनरुज्जीवनका प्रश्न हमारे लिये जीवन-मरणका प्रश्न है। परन्तु हम इसकी ओरसे पूर्ण उदासीन हैं और हमारे प्रयत्न तो हमारी सन्ततिको 'वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है' - इस वाक्यको उपहास्यापद कोटिमें मान्य किये जानेके लिये अग्रसर कर रहे हैं।

हमारा सम्पूर्ण व्यवहार एवं दैनिक जीवन जिन विद्याओं एवं जिस विज्ञानके आधारपर पग-पग चल रहा है उन विद्या एवं विज्ञानोंका आदि मूल अनीश्वरवादकी छत्रछायामें लालित एवं पालित है। उन विद्याओं एवं विज्ञानोंके आविष्कर्त्ता अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी थे। उनको वेद एवं ईश्वरपर विश्वास नहीं होनेसे उसका प्रभाव उन विद्याके अध्येताओं एवं उस विज्ञानके द्वारा उत्पन्न सुख सुविधाओंके उपभोक्ताओंपर भी अत्यन्त प्रभावशाली रूपमें पडता है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा दीक्षासे और वर्तमान विज्ञानसे तथा इससे उत्पन्न सभ्यता एवं संस्कृतिसे ईश्वर, वेद अध्यात्म, एवं धर्म विरोधी अभेद्य दुर्ग दृढतर होता जाता है।

हमने संसारके सामने अपनी प्रतिज्ञा तो घोषित करदी कि 'वेद सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक है' - परन्तु प्रतिज्ञा सिद्धिके लिये अभीतक यह भी नहीं बता सके कि वे सत्य विद्याएं कौनसी हैं, एवं कितनी हैं? जब हम यह भी नहीं बता सके तो उन विद्याओंको पढाना और उसके अनुसार व्यवहारका प्रचलन कैसे संसारमें हो सकेगा? जब हमारी प्रतिज्ञाको ही हम सिद्ध नहीं कर पाते और न उसकी सिद्धिके लिये ही प्रयत्न करते हैं तो प्रतिपक्षी-संसारका जनसमुदाय हमारी बात क्यों माने? वह तो हमारी बातोंका खण्डन ही करेगा और कहेगा कि- 'वेद विद्याओंकी पुस्तक नहीं है। उसमें तो आर्योंका इतिहास है। वह तो आर्यों द्वारा रचित सुन्दर काव्य मात्र है। उसमें तो आर्योंके सामाजिक एवं दार्शनिक जीवनका एवं विचारोंका चित्रण है। उसमें तो घोडा, गाय आदि पशु मारना लिखा है। उसमें जूआ खेलना लिखा है। मद्य पीना लिखा है। भाई बहिनके विवाह प्रस्तावादि सदृश बातें भी हैं। ... ' वैज्ञानिक एवं शिक्षित जगत् इन विचारोंसे वेदको देख रहा है।

यदि हम इन बातोंको सुनकर अधीर हो जाते हैं तो किसी न किसी प्रकारका उत्तर अपने ही क्षेत्रमें, अपने ही पक्षके व्यक्तियोंमें उसके खण्डनके लिये दे देते हैं। हमारा उत्तर प्रतिपक्षीके पास तो पहुँच ही नहीं पाता और न भूमण्डलके शिक्षित समाज और वैज्ञानिक जगत्के सम्मुख ही हमारी विचारधारा ही पहुंच पाती है। चाहिये तो यह कि स्व-पक्षस्थापनाका प्रयत्न तो सम्पूर्ण शक्तिके साथ सदा हम करते रहें। स्व-पक्षस्थापना तभी पूर्ण होगी जब कि हमारी शक्ति वेदोंसे सब विद्याओंके अन्वेषण और उसको व्यवहारोपयोगी बनानेमें लग जाये और जन-साधारणमें उसका इसी प्रकार प्रचलन हो जावे जैसा आज पाश्चात्य विद्या, विज्ञान एवं विचारधाराका भूमण्डलपर साम्राज्य है। अन्यथा प्रतिज्ञा असिद्धिका यही परिणाम हो रहा है कि आज हम वेदका नाम अवश्य लेते हैं, परन्तु व्यवहार रूपमें उसके प्रति हम, हमारी संस्थायें, सभायें और हमारी सन्तानें पूर्ण उदासीन हैं। यदाकदा वेदानुसन्धान कार्यके प्रति हममें उत्साह और उमंगके भाव आ जाते हैं। परन्तु योजना शून्य उत्साह, होनेसे सफलता कोसों ही सदा दूर बनी रहती है।

यदि अनुसन्धानकी योजना कोई वैयाकरण बनाता है तो उसे अपने द्वारा भाष्य रचनाका कार्य ही उत्तम प्रतीत होता है या महर्षिके वेदभाष्य पर व्याकरण प्रक्रियामें अपना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाण्डित्य प्रदर्शन करनेको ही अनुसन्धानकी सफलताकी कसौटी मानता है। यदि कोई एम्. ए., डी. लिट् व्यक्ति अनुसन्धानकी योजना बनाता है तो उसके अनुसार अनुक्रमणिका कार्य (Indexing work) और लिपिक (Clerical) कार्य ही अनुसन्धानकी श्रेणीमें बडा महत्वपूर्ण कार्य समझ लिया जाता है। यह बातें प्रकट करती हैं कि हमारे मस्तिष्कमें यथार्थ रूपमें अनुसन्धानकी कोई रूपरेखा है ही नहीं। पाश्चात्य विद्वानोंने वेदको जिस दृष्टिसे देखा, उसी दृष्टिसे उन्होंने अनुसन्धान भी प्रारंभ किया। वे अपने लक्ष्यके अनुसार कार्य कर रहे हैं। परन्तु हम भी उनका अनुकरण करनेमें अपना गौरव अनुभव करें तो हम अपने अनुसन्धान कार्योंसे विदेशियोंके वेद सम्बन्धी मतोंकी ही पुष्टि करनेमें सहायक सिद्ध हो सकेंगे। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि हम वेद सम्बन्धी अनुसन्धान अपने लक्ष्यके अनुसार ही करें।

हमारा लक्ष्य है वेदोंमें जो सब सत्य विद्यायें हैं, उनका मानव जातिमें प्रचलन हो और उससे प्राणिमात्रको सुखकी प्राप्ति हो। अतः इसकी पूर्तिके लिये सबसे प्रथम कार्य यह करना होगा कि हम एक सूची तैयार करें जिससे यह ज्ञात हो सके कि वेदमें कौन कौनसी विद्यायें हैं? यह कार्य चारों वेदोंके सम्यक् परायणसे हो सकता है। इस कार्यमें कमसे कम इसे ५ वर्षका समय लगेगा और १-२ विद्वान् इस सूचीको तैयार कर सकेंगे। इसके साथ ही आज भूमंडल पर कितनी विद्यायें प्रचलित हैं इसकी भी सूची १-२ विद्वान् तैयार कर सकते हैं। इस प्रकार वैदिक विद्याओंकी तथा अर्वाचीन विद्याओंकी सूची तैयार करनेका कार्य ४ विद्वानों द्वारा ५ वर्षोंमें पूर्ण हो सकता है।

इस कार्यके पश्चात् १ वर्षमें दोनों प्रकारकी विद्याओंका अर्थात् पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित विद्याओं और वेदकी विद्याओंका समन्वय एवं भेदका कार्य संक्षिप्त रूपमें यह हो सकता है कि वर्तमानमें प्रचलित विद्यायें वेदकी किस-किस विद्याके अन्तर्गत समझी जा सकती हैं और ऐसी कौनसी विद्यायें हैं जिनपर पाश्चात्य जगत्ने अभी तक कुछ भी कार्य नहीं किया है। जिन विद्याओंके बारेमें अभी तक कुछ भी कार्य एवं अनुसन्धान नहीं हुआ है उन पर यदि हम और हमारे विद्वान् अनुसन्धान कर सकते हैं तो उसके लिये हमें अपना अनुसन्धान मार्ग निकाल कर कार्य प्रारंभ करना चाहिये अथवा यदि उसके अनुसन्धानके लिये पाश्चात्यके विद्वानों एवं वैज्ञानिकोंको अनुसन्धानकी प्रेरणा दे सकते हैं तो देनी चाहिये। इस प्रकार सहयोगात्मक प्रणालीसे भी कार्य हो सकता है और जिन विद्याओंके विषयमें हम स्वतन्त्र रूपसे कार्य कर सकते हैं उनके बारेमें स्वतन्त्र रूपसे अनुसन्धान कार्य प्रारंभ कर देना चाहिये।

उदाहरणार्थ— 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः' यह हमारे वेद-शास्त्रोंकी एक सर्व सम्मत सुनिश्चित घोषणा है। इसको सर्व साधारणके लिये इतना सुपरीक्षित एवं अनुभव सिद्ध प्रमाणित कर दिया जावे कि जब चाहे तभी इसका प्रयोग करके जनता लाभ उठा सके।

वेदने— 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' हमारे मुखसे प्रार्थनाके रूपमें वाक्य कहलवाया है। अतः 'निकामे निकामे' जब-जब कामना करें, जब-जब चाहें, तब-तब वर्षा होजाये ऐसी स्थिति प्राप्त करनी होगी। प्रार्थनाकी सफलता इसीमें है। संकल्प या इच्छाके अनुसार वर्षा हो जाये ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये मानसूनको बनाना, उसको इच्छानुसार स्थान पर केंद्रित करना, उसको घनीभूत करके मेघरूपमें लाना पुनः उसको न्यूनाधिक इच्छानुसार बरसाना और इस कार्यमें यदि वायुकी प्रतिकूलता हो जाये तो उसे भी नियन्त्रित करना, वायुके घनत्व और दबावमें इच्छानुकूल परीवर्तन करना इत्यादि क्रियाओंके जाने बिना यह कार्य संभव नहीं। किसी भी मन्त्रको पढकर किसी भी द्रव्यकी आहुति देने या दिलाने मात्रसे यह कार्य सिद्ध नहीं होगा। इसके लिये मन्त्र और आहुति दोनोंको ही विद्या एवं विज्ञानकी युक्तिसे प्रयुक्त करके व्यवहारोपयोगी बनाना होगा। जब इस वैदिक विज्ञानके व्यावहारिक रूप द्वारा जनताका कल्याण हो सकेगा तभी वेदके प्रति भ्रान्त धारणाओंका निराकरण जन मानसके हृदयोंसे स्वतः ही हो जावेगा।

'निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु'— जब-जब चाहें तब बादल वर्षा करें, इससे विपरीत स्थिति भी प्राप्त करनी होगी। अर्थात् जब-जब वर्षा न चाहें तब वर्षा न हो या वर्षा रुक जावे। अर्थात् वृष्टि कराने पर और न कराने कर या वर्षा रोकने पर भी पूर्ण नियन्त्रण अपनी इच्छानुसार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होना चाहिये। अतिवृष्टि और अनावृष्टि पर अपने नियन्त्रणसे कितना उपयोगी कार्य हो सकता है ? हम पृथ्वीको अन्न और फलोंसे समृद्ध कर सकते हैं। प्राणिमात्रके प्राणोंकी रक्षा एवं जीवनमें इस प्रक्रिया द्वारा हम महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर सकेंगें।

वेदोंमें वृष्टि विज्ञानके लिये बहुत कुछ महत्वपूर्ण बातें प्राप्त होती हैं। अतः इस विद्याका अनुसन्धान करें तो हम वैदिक विज्ञानसे प्राणिमात्रका लाभ कर सकते हैं और इससे वेदोंका महत्व विश्वमें स्थापित करके वेदोंके पठन पाठनके लिये समस्त देशोंको प्रेरणा दे सकते हैं। जब हम वेदोंको इस प्रकार विद्याकी पुस्तक प्रमाणित कर देंगे तो वेदके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानों द्वारा फैलाये गये भ्रान्त एवं मिथ्या वादोंका स्वतः ही निराकरण हो जायगा। और वेदके अध्ययनकी ओर सबकी प्रवृत्ति भी बढेगी। यह कार्य ५ वर्षमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। व्यर्थके अण्ड-बण्ड आन्दोलनोंमें अपनी शक्ति और धनको न लगा कर यदि आर्य जन आर्य समाजें, आर्य संस्थायें और प्रतिनिधि सभायें इस प्रकारके अनुसन्धान कार्योंमें अपने धन, शक्ति और जीवनको लगावेंगे तो वास्तवमें अपने लक्ष्य प्राप्तिमें सफल हो सकेंगे।

इसी प्रकार वेदमें लोकलोकान्तरोंमें जानेके बारेमें–'ताभ्यां पतेम सुकृतामुलोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः–' (यजु. १८।५२) के द्वारा किन्हीं प्रकारके विमानों और उनके द्वारा लोकलोकान्तर जानेका संकेत मिलता है। यह कार्य संभव है तभी मन्त्रकी रचना भी ऐसी है। लोक लोकान्तर जानेकी विद्या प्राचीन कालमें प्रचलित थी। नारद ऋषिका लोकलोकान्तर जाना अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त मन्त्र, तप, ओषधि एवं समाधि द्वारा लोकान्तर गमनकी सिद्धि शास्त्रोंने बताई है। यदि इस बारेमें अनुसन्धान प्रारंभ किया जावे तो वह निरर्थक सिद्ध नहीं होगा। संभव है अभी हम ५ वर्षमें या १० वर्षमें वह स्थिति प्राप्त न कर सकें, तथापि उस अन्वेषणसे मध्यवर्ती बहुतसे रहस्य प्रकट हो सकेंगे जो अन्य विद्वानोंके अन्वेषणमें सहयोग प्रदान कर सकेंगे।

आजसे १० वर्ष पूर्व मैंने वेदकी छन्द शक्तिके आधार पर ऐसे यन्त्रोंके बारेमें विचार किया था जिनके आधार पर बिना पेट्रोल आदि इन्धनके ही यन्त्रका चालन हो सके। वेदमें छन्द शब्द केवल पिंगलके छन्दसे ही सम्बन्धित नहीं है अपितु बहुत व्यापक अर्थमें है। मैंने वेदके 'माच्छन्दः' के आधारपर यन्त्रमें गति एवं शक्तिका प्रादुर्भाव बताया था। यदि इस कार्यमें परीक्षण किये जायें तो ३ वर्षमें लोकोपयोगी परिणाम दृष्टिगोचर हो सकते है।

इसी प्रकार पशु पक्षियोंकी बोलियोंके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके अर्थ ग्रहण करनेके संकेत वेदमें उपलब्ध हैं। योगदर्शनमें इस विद्याके विकासका प्रकार भी बताया गया है। ५ वर्ष यदि इस कार्यमें लगाये जावें तो बहुत बडी सफलता प्राप्त हो सकेगी। अभी वर्त्तमान अन्वेषकोंने इस कार्यमें प्रगति नहीं की है। यदि हम कार्यको हाथमें लेकर कार्यमें अग्रसर हो जावें तो वैदिक विज्ञानकी प्रतिष्ठाको स्थापित करनेमें यह भी बहुत सहायक सिद्ध होगा।

इसी प्रकार– 'वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्' के आधार पर वेदने हमें विश्वका सूक्ष्म अवगाहन करनेकी प्रेरणा दी है कि यज्ञ सैकडों और सहस्रों प्रकारसे विश्वको धारण करनेवाला है। यज्ञके द्वारा विश्वका धारण, पोषण और उसके तत्वोंकी शक्ति एवं सामर्थ्य किस किस प्रकारसे प्राप्त होती है और उनके सैकडों और सहस्रों प्रकार या विधियाँ क्या है तथा उनसे किस-किस प्रकार विश्वके कौने-कौनेसे पदार्थोंका धारण और पोषण हो रहा है, यही तो विश्वका महान् विज्ञान है जो वेदके दैवत एवं छन्दस विज्ञानोंसे विश्वमें व्याप्त है और जिसके माध्यमसे विश्वका कार्य सुव्यस्थित रूपसे चल रहा है। इसी विज्ञानके आधारपर प्रभुके यज्ञ द्वारा भी जो यज्ञ सदा सृष्टिमें चलता रहता है– विश्वका धारण, पोषण एवं संचालन हो रहा है और विश्वका जीवन बना रहता है। इसी विज्ञानको प्राप्त कर हम भी अपने यज्ञों द्वारा विश्वके अन्दर अपने अनुकूल वृद्धि एवं क्षय करके संसारको लाभान्वित कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ– यदि शीतकी लहर वायुमण्डलमें व्याप्त हो जानेसे पृथिवीस्थ प्राणियोंको कष्ट हो रहा हो तो यज्ञके माध्यमसे उन तत्वोंका प्रसारण किया जावे जिससे अपने नियत क्षेत्रमें ही शीतकी हानिसे रक्षा हो सके या उस क्षेत्रके आग्नेय तत्वोंको सक्रिय करके वातावरणको समशीतोष्ण बनाया जा सके। इसी प्रकार ग्रीष्मकी प्रचण्डतासे यदि प्राणियों, वृक्षवनस्पतियोंको प्रतिकूलता हो जावे तो उसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निवारणार्थ वातावरणके शीत तत्वोंको सक्रिय एवं बनाया जा सके। इसी प्रकार वायुकी गति बदलनेका कार्य भी संभव है। यदि वातावरण पर इच्छित नियन्त्रणके प्रयत्न एवं परीक्षण किये जावें तो बहुत कुछ सफलता यज्ञके विशाल विज्ञानके द्वारा प्राप्त हो सकती है। इस कार्यमें सहयोग प्राप्त करनेके लिये वेद एक अक्षय कोषके तुल्य प्रमाणित होगा।

इतना ही नहीं वेद तो विद्या और विज्ञानके क्षेत्रमें हमें बहुत अग्रसर करता है। यज्ञके विज्ञानसे अन्तरिक्ष और द्युलोकमें, नक्षत्र एवं ग्रहोंपर भी अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव डाला जा सकता है। प्रत्येक वस्तुके निर्माणमें विश्वकी समस्त शक्तियोंका भाग रहता है। परन्तु उनके गुण, कर्म, विपाक, वीर्य एवं प्रभाव तत्वोंके पृथक्-पृथक् होते हैं। जब वस्तु निर्मित होती है तो वह अपने अन्दर उन सब तत्वों एवं शक्तियोंसे युक्त होती है और जब यज्ञमें विकेन्द्रीकरण किया जाता है तो उसके तत्व और शक्तियाँ अपने मूल तत्वोंमें स्थापित हो जाती हैं। यदि उनका विकेन्द्रीकरण करते समय उनमें अन्य द्रव्योंके संस्कार उत्पन्न करनेके लिये इच्छित द्रव्य भी डाले जावें तो उन द्रव्योंके संस्कारोंके साथ भी उस द्रव्यके तत्व और शक्तियाँ अपने मूल द्रव्यमें पहुँचकर उसमें अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने लगती हैं। इसी सिद्धान्तके आधार पर भारतके ऋषियोंने चन्द्रमा मण्डलके क्षयका निवारण भी पूर्व कालमें किया था। यदि चन्द्रमामें सोमकी न्यूनता हो जावे तो पृथिवीस्थ वृक्ष, वनस्पतिकी बहुत ही हानि हो जावे। यदि यज्ञ द्वारा हम चन्द्रमामें सोमकी उत्पत्तिके प्रकारको समझकर उसका प्रयत्न करें तो उसका परिणाम पृथिवीके लिये हितकर होगा।

इसी प्रकार पृथिवीमें यदि उत्पत्ति शक्तिकी क्षीणता या न्यूनता हो जावे तो यह पृथिवीकी उत्पादन शक्तिका क्षय है। इस क्षयका निवारण भी इसी आधारपर हो सकता है। इसी आधारपर पृथिवीके अन्दर सुवर्णादिकी वृद्धिका कार्य भी यज्ञके विज्ञानसे संभव है। इसी प्रकारसे अनेक कार्य हैं जो वेदमें यज्ञके विज्ञानसे सम्बन्धित हैं और अनुसन्धान तथा परीक्षाओंकी बहुत आवश्यकता रखते हैं। उपरोक्त कार्य श्रद्धाके ही विषय नहीं हैं अपितु बडे तर्क संगत हैं। जब हम इनपर विचार करते हैं तो इनकी सत्यता २+२ = ४ के समान प्रतीत होती है।

वेदमें– 'सुषुम्नः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः' कह कर बताया गया है कि सूर्यकी एक रश्मि सुषुम्ना है जिसको कि चन्द्रमा धारण करता है और वह प्राणियोंके लिये सुखप्रद है। महर्षि दयानंद सरस्वतीने इस मन्त्रका भाष्य करते हुए लिखा कि मनुष्योंको चाहिये कि वे सूर्य एवं चन्द्रकी रश्मियोंके विविध उपयोगको जानें। इस आधारपर यदि हम सुषुम्ना रश्मिको जानकर एक कृत्रिम उपग्रह चन्द्र तत्वोंका बनाकर भूमण्डलके चारों ओर घूमनेवाला इस प्रकारसे चलावें कि उसपर सुषुम्ना रश्मि पडे और उसका लाभ चन्द्रमाके प्रकाशके अभावमें नियमित रूपसे हो सके तो रात्रिमें सदा प्रकाश ही बना रह सकता है। अनेक प्रयत्नों एवं परीक्षणोंसे यह भी संभव है। इस प्रकार वेदसे हमें उच्चतर विज्ञानकी भी महान् प्रेरणा मिलती है। आज जबतक हम इस प्रकारके विज्ञानोंसे विश्वको लाभान्वित नहीं कर सकते और वेदके विज्ञानको व्यवहारोपयोगी नहीं बना सकते तबतक हमारे सब प्रयत्न वेदके प्रचारके निष्फल ही होते रहेंगे। अतः वेदके अनुसन्धानके लिये इसे अपने विचारोंमेंसे अनुसन्धानके लिये मौलिक परिवर्तन करना होगा तभी सफलता प्राप्त हो सकेगी। ● ● ●

दैवत-संहिता

		मूल्य	डा. व्य.
१	अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२	इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३	सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	॥)
४	उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	१)
५	पवमान सूक्तम् (मूल मात्र)	॥)	=)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परम धर्मका पालन

महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीने भारतवर्षकी उन्नति हो तथा भारतवर्षके द्वारा पृथिवीपरके सब देशोंमें वैदिक धर्मका प्रचार हो, आर्य होकर सब देशवासी एक वेदीपर आयें, और अपनी आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक उत्क्रांति करनेका मिलकर विचार करें, इस महान् उद्देश्यके लिये आर्यसमाजकी स्थापना की।

परम धर्मका पालन

'वेद सर्व सत्यविद्याओंकी पुस्तक है, अतः वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।' यह आर्योंका परम धर्म निश्चित करके, आर्योंके सामने उन्होंने रखा। इस परमधर्मको सामने रखकर, इस ध्येयकी सिद्धिके लिये आर्योंको सदा प्रयत्नशील होना चाहिये यह महर्षिजीकी आज्ञा है।

पर इस महर्षिजीकी 'परमधर्मके पालन करनेकी आज्ञा' का परिपालन कितने आर्य कर रहे हैं? कितने आर्य रोज वेदका पाठ कर रहे हैं, कितने आर्य रोज वेदके मंत्रोंका विचार कर रहे हैं और कितने आर्योंके घरमें वेदके ग्रंथ हैं और वेदानुवादके पुस्तक कितने आर्योंके घरोंमें दीख सकते हैं। इसका विचार किया जाय, तो इसका उत्तर जो आज़ायगा, उतना ही महर्षिजीके परम धर्मका परिपालन हो रहा है, यह स्पष्ट होगा।

अन्य धर्मियोंके कार्य

ईसाई धर्मवालोंने अपने बायबलका अनुवाद १२७० भाषाओंमें करके, उसको मुद्रित करके प्रकाशित भी किया है और इन अनुवादोंको लेकर वे इसाई धर्मका प्रचार कर रहे हैं। प्रतिदिन १०० हिंदु ईसाई धर्ममें जा रहे हैं।

मुसलमानोंने अपने कुरान शरीफका अनुवाद सात भाषाओंमें छापकर प्रकाशित किया है और ये अपने धर्मका प्रचार अपने ढंगसे कर रहे हैं।

वेद श्रेष्ठधर्मग्रंथ

आर्योंका प्राचीनतम अपूर्व धर्मग्रंथ 'वेद' है। जगत् के अन्दर जितने धर्म ग्रंथ हैं, उनमें वेद प्राचीनतम पवित्र धर्म ग्रंथ हैं। आर्योंके पास यह जैसा प्रारंभमें था वैसा ही आज है। एक अक्षरका भी इसमें अपपाठ नहीं हुआ है।

विश्वके सब विद्वान् वेदका प्राचीनत्व तथा उसके अर्थ गौरवत्वको स्वीकार करते हैं। ऐसा यह अपूर्व ग्रंथ 'वेद' है। इस वेदका अनुवाद संपूर्ण रीतिसे किसी एक भाषामें भी आजतक नहीं हुआ है। क्या यह आर्योंके लिये लज्जाकी बात नहीं है? महर्षिजीने आर्योंको परमधर्मकी पुस्तक दी, आर्योंने वेद परमधर्मकी पुस्तक है, ऐसा स्वीकार भी किया, पर हरएक आर्यने अबतक अपने घरमें वेदको न ही रखा और 'प्रतिदिन वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना आर्योंका परम धर्म है' इस परम धर्मका पालन भी नहीं किया।

आर्य प्रतिनिधिसभाने वेदके ग्रंथ आर्योंके घरघरमें रहें इस संबंधका कोई यत्न आजतक नहीं किया। यहांतक कि आज जितने आर्यसमाज भारतमें तथा भारतके बाहर हैं उनमें भी वेदग्रंथ होंगे ऐसा निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। यह अत्यंत शोककी बात है। पर यह बात ऐसी ही है इसमें संदेह नहीं है।

वेदकी धूम

आर्यसमाजोंके महोत्सव होते हैं उनमें प्रायः वेदोंके गौरवपर ही व्याख्यान होते हैं। 'वेदोंकी धूम' वगैरे शीर्षक देकर उनके वृत्तांत छापे जाते हैं, पर कोई आर्य अपने घरमें वेदोंके पुस्तक नहीं रखता और कोई रोज वेदमंत्रोंको पढनेका यत्न भी नहीं करता!!!

आर्य प्रतिनिधि सभाने उन वेदोंके अनुवाद प्रकाशित करके सस्ते देनेका उपक्रम भी नहीं किया। हर प्रान्तोंमें आर्य प्रतिनिधि सभा है और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा भी सर्वोपरि है। देहलीमें उसका बडा भवन भी है। पर वेदोंका अनुवाद छापनेका विचार भी आजतक उन्होंने नहीं किया! क्या वेदानुवाद प्रकाशित करना उनका कर्तव्य नहीं है? यदि यह उनका कर्तव्य नहीं है तो यह किसका कर्तव्य है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding: MIDF

भारतकी भाषाओंमें वेदानुवाद

भारतवर्षमें १६ प्रधान भाषाएं हैं, उनमें प्रथमतः वेदोंके अनुवाद प्रकाशित करने चाहिये। वे अबतक नहीं हुए। क्या आर्य प्रतिनिधि सभाएं इसका विचार कर सकती हैं? केवल 'कृण्वन्तो विश्वं आर्यं' का उच्चार करनेसे विश्वको आर्य बनाना नहीं हो सकता। विश्वको आर्य बनाना हो तो विश्वकी सब भाषाओंमें वेदके अनुवाद प्रकाशित करने चाहिये। यह प्रथम करना चाहिये और पश्चात् प्रचार हो सकेगा।

हमने वेद छापे हैं। हरएक वेदमें अपनी अपनी पद्धति है। ऋग्वेदमें अग्नि आदि देवताओंके बिखरे सूक्त हैं। कई मंडल ऋषिवार हैं, पर नवम मंडल देवतावार है। इसको देखकर मनमें विचार आता है कि वेदकी मंत्र व्यवस्था देवतावार होनी चाहिये या ऋषिवार होनी चाहिये। देवता उपास्य हैं और ऋषि उपासक। उपास्यके पास उपासक अपेक्षित वस्तु मांगता है। अर्थात् उपास्य देव देनेवाला है और उपासक ऋषि लेनेवाला है। इस कारण देवतावार मंत्रविभाग किये जांय तो पठनके लिये तथा विषय समझनेके लिये अच्छा होगा।

दैवत संहिता

हमने दैवत संहिता बनाई और अग्नि, इन्द्र, अश्विनौ आदि देवताओंके मंत्र देवतावार इकट्ठे किये। इससे प्रत्येक देवताके गुणधर्म इकट्ठे हुए और देवताओंके गुणधर्म ठीक तरह समझमें आनेकी सुगमता हुई। दैवत संहिता करनेसे सब देवताओंकी एक संहिता हो गई और चार संहिताएं पृथक् पृथक् घरमें अपने पास रखनेकी आवश्यकता नहीं रही।

विश्वराज्यके संचालन

दैवत संहिता बननेसे सब देवताएं संपूर्ण विश्व चलानेमें सहायक हो रही हैं यह बात स्पष्ट हो गयी। विश्वराज्य यह 'आधिदैविक व्यवस्था' है, इसी तरह 'अध्यात्मराज्य' शरीरमें चल रहा है। इन दो आधिदैविक और आध्यात्मिक राज्य व्यवस्थाओंको देखकर 'आधिभौतिक अर्थात् मानव राज्यव्यवस्थाका बोध' हमें प्राप्त करना है और तदनुसार हमें अपना राज्य चलाना है।

अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

अध्यात्म व्यवस्था प्रत्येकके शरीरमें चल रही है, अधिभूत व्यवस्था राष्ट्रशासनमें चलानी है और आधिदैविक व्यवस्था विश्वमें चल रही है। शरीरमें तथा विश्वमें स्वयं व्यवस्था चल रही है, इसमें जो व्यवस्था चल रही है वह अध्यात्म और आधिदैवत व्यवस्था है। इन व्यवस्थाओंको देखकर, वहांके नियम जानकर उन नियमोंके अनुसार अधिभूत अर्थात् राष्ट्रशासनकी व्यवस्था चलानी है। वेदमें इन तीनों व्यवस्थाओंका एक विशिष्ट नियमसे वर्णन किया है। इस लिये यह विशिष्ट नियम जानना वेदका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अत्यंत आवश्यक है। और यह कार्य दैवत संहितासे उत्तम प्रकार हो सकता है। इसलिये संपूर्ण वेदके सब मंत्र देवतावार संग्रहित करके सबका मिलकर एक ग्रंथ बनाना चाहिये।

ऋग्वेद	मंत्र	१०५५२
यजुर्वेद	मंत्र	२०००
सामवेद	मंत्र	१८००
अथर्ववेद	मंत्र	५९७७
		२०३२९

करीब २० हजार मंत्र चारों वेदोंके हैं। इनमें करीब ४००० मंत्र पुनरुक्त हैं। करीब १६ हजार मंत्र शेष रहते हैं। वे देवतानुसार बांट कर छापे जांय तो उनका एक उत्तम पुस्तक बन सकता है। इसमें एक भी मंत्र छोडा नहीं जायगा या छूट नहीं जायगा। जितने मंत्र चारों वेदोंमें हैं वे सब इस दैवत संहितामें आ जायेंगे और उनका एक पुस्तक बनेगा।

ग्राहकोंको भी सुविधा

आजके वेदोंका मूल्य ऐसा है—

ऋग्वेद	१०) रु.
यजुर्वेद	२) रु.
सामवेद	२) रु.
अथर्ववेद	६) रु.
	२०)

बीस रु. में चार वेद मिलते हैं। प्रत्येक आर्य २०) रु. देकर चारों वेदोंको खरीद सकेगा ऐसा दीखता नहीं। यदि दैवत संहिता चारों वेदोंकी इकट्ठी बनाई जाय और बिना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाभके बेची जाय तो १०) में दी जा सकती है। प्रचारार्थ ऐसा करना आर्य प्रतिनिधि सभाके लिये उत्तम है।

दैवत संहिता

हमने दैवत संहिता बनायी है और विक्रयार्थ रखी है। इस सुव्यवस्थासे वेद प्रचारमें सहायता होगी ऐसा हमारा विश्वास है। वेद प्रचार करना यह आर्य प्र. सभाका मुख्य ध्येय है।

वेदोंका अर्थ

वेदोंका अर्थ भी आजकी संहिताओंकी याज्ञिक व्यवस्थाकी अपेक्षा हम दैवत व्यवस्थाको पकड कर करें तो अधिक सुगम हो सकता है। एक एक देवता एक एक कार्य महत्वपूर्ण रीतिसे कर रही है जैसा—

अग्नि देवता ज्ञान प्रचारका कार्य करती है।
इन्द्र देवता शौर्यवीर्य प्रचारका कार्य करती है।
मरुत् देवता सैनिक व्यवस्थाका कार्य करती है।
अश्विनी देवता आरोग्य व्यवस्थाका कार्य करती है।

इस प्रकार अन्यान्य देवता अन्यान्य कार्य करते हैं। दैवत संहिताकी व्यवस्थासे यह सब देवताओंके कार्यका ज्ञान यथायोग्य रीतिसे हो सकता है और वेदके ज्ञानका प्रसार भी शीघ्र हो सकता है।

आर्थिक सहायता

इसलिये आर्य प्रतिनिधि सभाओंसे प्रार्थना है कि वे इस कार्यमें जितनी शक्य हो उतनी सहायता दें। प्रतिवर्ष १० दस हजार रु. आ. प्र. सभा इस कार्यके लिये देवे तो हम पांच वर्षोंमें सब वेदोंका दैवतसंहिताके अनुसार अर्थ और स्पष्टीकरण प्रसिद्ध कर सकेंगे।

प्रति वर्ष दानके रूपमें देना संभव न हो तो उतने रु. के पुस्तक हमसे लें और अपने अन्दर कार्य करनेवाले आर्य समाजोंमें उन पुस्तकोंका प्रचार करें और अपना धन वसूल करें।

वेद प्रचारमें सहायता

वेदका प्रचारका कार्य इस तरह सहयोगसे बहुत हो सकता है इसका विचार आ. प्र. सभाके अधिकारी करें और वेद प्रचारके लिये कटिबद्ध हों यही उनके पास विनंती है।

हरएक आर्यसमाज हमारे पुस्तक खरीद कर हमें सहायता कर सकते हैं। पुस्तकें खरीदनेसे उनके पुस्तकालयकी वृद्धि होसकती है और सदस्योंका लाभ होसकता है।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल
पारडी जि. सूरत

चिरप्रतीक्षित पुस्तक] [छप गई

गीता- पुरुषार्थबोधिनी (हिन्दी)

चिरप्रतीक्षित पुस्तक 'पुरुषार्थबोधिनी' छपकर तैय्यार हो गई है। इस पुस्तकके लिए कई पाठकोंके पत्र प्राप्त हुए इसलिए शीघ्र छापनी पडी। आप भी शीघ्रसे शीघ्र आर्डर दीजिए। मूल्य डाक व्यय सहित १५) रु.

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पो. 'स्वाध्याय मण्डल, पारडी', पारडी (जि. सूरत)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आर्यसमाज और विचारोंमें भेद

(खण्ड २ रा)

(लेखक— श्री गंगाप्रसाद, रिटा. चीफ जज, जयपुर)

*

यह संस्था (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्था) सन् १९२४ ई. से चल रही है। वेदों और वैदिक साहित्यके विषयमें खोज व अनुसंधान Research करना इसका मुख्य उद्देश्य है। उक्त अनुसंधानके परिणाम रूप १५ जिल्दोंमें Vedic word Concordance ग्रन्थ माला तय्यार करना इसका मुख्य उद्देश्य है। ६ जिल्दें तय्यार हो गई हैं। शेषका काम जारी है। हर जिल्दका मूल्य ५०) है। वेदोंमें और ब्राह्मण आदि वेदोंके मुख्य साहित्यमें, जितने शब्द हैं, हर शब्दकी वैज्ञानिक खोजके अनुसार पूरी व्याख्या दी जायगी। बडी खोजका कार्य है। ऐसा कार्य देशभरमें क्या, संसारभरमें अन्यत्र नहीं हो सकता। लगभग तीन लाख रुपयेका वार्षिक बजट समितिका होता है। गत वर्षकी रिपोर्ट मेरे सामने है ३ लाख १९ हजार रु. की आय हुई। ३ लाख ६१ हजारका खर्च हुआ, अर्थात् ४१ हजार रुपयेका घाटा रहा। घाटा बहुत बार रहता है। यह श्री पं. विश्वबन्धुजी जो संस्थाके प्राण हैं उसको जैसे तैसे पूरा करनेका यत्न करते हैं संस्थाके प्रधान श्रीयुत् बख्शीटेकचन्द M. A. L L. D., रिटायर्ड जस्टिस पंजाब हैं। उपप्रधान श्री डा० महाजन M.A. L L. D., रिटायर्ड चीफ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट है।

श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वतीजीसे जिनके नामसे यह संस्था स्थापित है, मेरा परिचय पहली बार सन् १९०५ के दिसम्बर मासमें हुआ, जब कि बंबई आर्य समाजका वार्षिकोत्सव था। मैंने उसमें पहली बार उस विषय पर भाषण दिया था जो पीछे Fountain Head of Religion के नामसे पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुआ। यह संस्था कुछ वर्ष पीछे स्थापित हुई। संयोग वश बंबई आर्य समाजके जिस वार्षिक उत्सवमें श्री स्वामीजीने अपनी योजनाको उपस्थित किया था उसका मैं सभापति था। इस प्रकार प्रारंभहीसे मेरी इस संस्थासे सहानुभूति है। मैं इसका स्थायी सदस्य Life member भी हूं।

इस समय श्री विश्वबन्धुजी आर्य समाजके सभासद नहीं हैं। वे एक समय आर्य समाज लाहौरके प्रधान थे। महात्मा हंसराजजीकी प्रेरणासे वे डी. ए. वी, कालिज अनुसंधान विधान के अध्यक्ष भी नियत होगये थे। सन् १९२८ में आर्य समाजके कुछ लोगोंने उनके विरुद्ध यह प्रचार करना आरंभ किया कि वे वेदोंमें इतिहास मानते हैं। मेरी संमतिमें वेदोंमें इतिहास मानना कोई सिद्धान्त विरुद्ध बात नहीं है। मेरी यही मान्यता है। इस प्रचारने धीरे धीरे आन्दोलनका रूप धारण कर लिया सन् १९३४ में म. हंसराजजी भी इस आन्दोलनके समर्थक होगये। सन् १९३६ में महात्माजीकी प्रेरणासे लाहौरकी अन्तरंग समाने श्री विश्वबन्धुको आर्यसमाजकी साधारण सदस्यता से भी वंचित कर दिया। विश्वबन्धुजीने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया आर्य समाजसे कोई त्याग पत्र भी नहीं दिया।'

पूर्वोक्त घटनाओंके विषयमें मैंने भी विश्वबन्धुजीको पत्र लिखे थे उनका अन्तिम उत्तर ४।८।६० का लिखा हुआ मेरे पास आया है मैं उस पूरे पत्रको ज्योंका त्यों इस लेखमें प्रकाशित करता हूं। वह निम्न प्रकार है—

'प्रिय मान्यवर, नमस्ते। आपके २०।६।६० के पत्रमें संकेतित विषयके संबन्धमें निम्न लिखित स्थिति समझनी और तदनुसार अपने लेखको ठीक कर लेनेका कष्ट कीजियेगा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) मेरी शिक्षा दीक्षा आर्य समाजमें हुई ११-१२ वर्षकी अवस्थामें व्याख्यान आदि देने तथा प्रबन्ध कार्य करने लग गया था—

(२) सन् १९२०-२१ में मुझको भारत सरकार की ओरसे चालू एकमात्र ४००) मासिक की विदेशमें जाकर अध्ययनार्थ छात्रवृति मिल रही थी। म. हंसराजजी के विदेश पर मैंने उस वृत्तिको अस्वीकार करके डी. ए. वी. कालिज सोसायटीका आजीवन सेवक बनना स्वीकार किया। उसी समय मेरी बनाई योजनाके अनुसार उक्त सोसायटीके अधीन खोले गये श्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय का मैं प्रथम आचार्य नियुक्त हुआ। वहां पर उसी समय १९२३-२४ में श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजीकी सहायतासे मेरे संचालकत्वमें विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान का प्रारंभ हुआ।

(३) सन् १९२८-२९ में आर्य समाजके कुछ लोगोंने मेरे विरुद्ध यह प्रचार करना आरंभ किया कि मैं वेदोंमें इतिहास मानता हूं।

(४) उक्त प्रचार धीरे धीरे प्रबल आन्दोलन का रूप धारण करता गया। सन् १९३३- में जब कि लाहौर आर्य समाज प्रधान भी था। म. हंसराज भी इस आन्दोलनमें शरीक हो गये और उन्होंने मेरे लिये आर्यसमाजकी वेदी बन्द करा दी, तथा आर्य समाज लाहौरके अगके चुनाव में मुझे प्रधान पदसे च्युत करा दिया—

(५) महात्माजीके आदेशानुसार मैंने ब्राह्म महा विद्यालयके आचार्यका पद छोडकर पं. भगवद्दत्तजीके स्थानपर डी. ए. वी. कालिज अनुसंधान विधानके अध्यक्षका पद स्वीकार किया।

(६) सन् १९३६ में आर्यसमाज लाहौरकी अन्तरंग सभामें पं. भगवद्दत्तजीकी प्रधानतामें एक विशेष प्रस्ताव द्वारा मुझे आर्य समाजकी साधारण सदस्यतासे भी बहिष्कृत सा कर दिया।

(७) मैंने आर्य समाजसे कभी कोई त्याग पत्र नहीं दिया। मेरे जीवनका अब भी यही लक्ष्य है कि मैं एक सच्चे आर्य समाजीके नाते एक मात्र सत्यका पुजारी बना रहूं। किसी बातमें मेरी दृष्टि भले ही मन्द रह जावे, परन्तु कभी भी दम्भयुक्त न हो।

(८) उपर्युक्त प्रकारसे मैं १९२४ से लेकर आज दिनतक विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थानका और उसके साथ ही, सन् १९३४ से लेकर डी. ए. वी. कालिज अनुसंधान (विभागका) भी संचालक चला आता हूँ। ये दोनों संस्थायें दो स्वतन्त्र सोसायटियोंके आधीन हैं अर्थात् विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान सभा और डी. ए. वी. कालिज प्रबन्धकर्तृ सभा।

(९) सन् १९३६ में अपने उपर्युक्त बहिष्कारके बादसे मैं किसी सांप्रदायिक संस्थाका सदस्य नहीं बना, और न कभी बनूंगा ही।

(१०) आर्यसमाजकी दृष्टिसे उपर्युक्त घटनाका क्या परिणाम हुआ, इस विषयमें विवेचनार्थ मुझे अभीतक समय भी नहीं मिल पाया। विगत २५ वर्षोंसे मेरा मैं ही स्वयं रहा हूँ, और मैं इसीमें पूर्णतया सन्तुष्ट हूं। स्मरणार्थ धन्यवाद।

भवदीय (हस्ताक्षर) विश्वबन्धु

किन कारणोंसे श्री विश्वबन्धुजीको आर्य समाजकी सदस्यतासे अलग किया गया उनपर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। इसलिये मेरी मान्यतामें उसका उनके व्यक्तित्व या Personality पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड सकता। वे अबतक डी. ए. वी. कालिज सोसायटीके सदस्य हैं। उस सोसायटीका ऐसा नियम है कि यदि कोई आर्य समाज उनकी संमतिके बिना उनके किसी सदस्यको बहिष्कृत करे तो उसके लिये आर्य समाजका उक्त निश्चय मान्य नहीं होगा।

श्री विश्वबन्धुजी वैदिक शोध संस्थानके आदरी (Honourary) संचालक (Director) हैं, और इतने वर्षोंसे बडी योग्यतासे उस विशाल कार्यको कर रहे हैं जो आर्यसमाजके लिये और संसारके लिये महान् उपयोगी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वप्न लोककी समस्याका उत्तर

(लेखक— श्री नाथूलाल वानप्रस्थी, वैदिक धर्म तथा संस्कृत विशारद, लश्कर)

श्री विश्वामित्रजी वर्मा विषहर जंगल, डभौरा (रीवा) ने 'वैदिक धर्म' दिसम्बर १९६१ के अंकमें 'स्वप्न लोक की समस्या' शीर्षकसे कुछ प्रश्न करते हुए उनके उत्तरोंकी मांग की है। यद्यपि प्रश्नकर्ता महोदय स्वयं मनोविज्ञानके प्रकाण्ड पंडित हैं तथापि उन्होंने परीक्षार्थ ही ये प्रश्न क्यों न किये हों, इनका उत्तर देना आवश्यकीय प्रतीत होता है।

प्रश्नकर्ता महोदयने यह प्रतिबन्ध भी लगाया है कि उत्तर प्रयोगानुभूत एवं स्वानुभूत दिये जावें, इन दोनों प्रतिबन्धोंके अतिरिक्त यह उत्तर प्रमाणभूत भी हों ऐसा प्रयत्न किया जावेगा। उत्तर निम्न प्रकार हैं।

(१) अन्तःकरणकी अपरोक्ष वृत्तिके द्वारा, इन्द्रियसे अजन्य जो विषय गोचर ज्ञानकी अवस्था है, उसे स्वप्नावस्था कहते हैं। (वृत्ति रत्नावली २५१)

(२) अन्तःकरणकी अपरोक्ष वृत्तिके द्वारा, इन्द्रियसे अजन्य विषय अगोचर सुखाकार वृत्तिकी अवस्थाको सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। (वृत्ति रत्नावली २५२)

(३) जाग्रतमें स्थूल शरीर द्वारा व स्वप्नमें सूक्ष्म शरीर द्वारा और सुषुप्तिमें कारण शरीर द्वारा विषय तथा निर्विषय सुखका उपभोग किया जाता है।

(४) जाग्रत शरीरमें इन्द्रियोंद्वारा जो क्रिया होती रहती है उसकी थकानको दूर करनेके लिये स्वप्नावस्था व स्वप्नावस्थाकी क्रियासे होनेवाली थकानको दूर करनेवाली सुषुप्ति अवस्था है।

१— उपरोक्त कथनानुसार जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें शरीर और मन थके हुए होते हैं और स्वप्न अवस्थामें स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें मन, चंचलताके रूपमें होता है किन्तु सुषुप्ती अवस्थामें भगवद्गीता ६।१९ वें श्लोकके अनुसार बिना वायु संचारके जिस प्रकार दीपककी ज्योति अविचल रहती है इसी प्रकार मन अविचल (चंचलता रहित) होता है।

२— उपरोक्त तीनों अवस्थाओंमें मनुष्यका आत्मतत्व प्राण वायुकी तरह एकसा रहता है और साक्षी एवं द्रष्टा रूपमें रहता है साक्षी एवं द्रष्टारूपमें रहनेका कारण यह है कि आत्मतत्व शरीर संघातसे भिन्न एवं ज्ञान स्वरूप है।

३— स्वप्न इसीलिये होते हैं कि स्थूल शरीरमें क्रिया करते-करते जो मानव शरीरमें थकान आ जाती है वह दूर हो जावे, अतः अन्य खेलोंकी तरह स्वप्न भी मानव-आत्माकी तफरीहका साधन है इसलिये मनुष्य जिस प्रकार खेलते-खेलते अंतमें खेलको अधूरे रूपमें ही बन्द कर देते हैं इसी प्रकार थकान दूर होनेपर स्वप्न भी अधूरे ही समाप्त हो जाते हैं।

४— जिस प्रकार बचपनसे बुढापेतक, स्वस्थ अथवा अस्वस्थ दशामें अनेक प्रकारके पदार्थ विज्ञान एवं विचार-धारामें अन्तर होता है इसी प्रकार समयानुसार अनेक प्रकारके स्वप्नोंमें भी अन्तर होता है और इस अन्तरके कारण ज्ञान एवं विचार धारामें उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

५— स्वप्न शारीरिक और मानसिक दोनों ही कारणोंसे ही होता है।

६— स्वप्न अलौकिक कारणोंसे नहीं होता। इह लौकिक कारणोंसे ही होता है।

७— अपनी इच्छासे कोई स्वप्न नहीं देखे जा सकते हैं और न अनिष्ट स्वप्न रोके जा सकते हैं। क्योंकि स्वप्न अवस्थामें स्थूल शरीर व इंद्रियोंका कोई अधिकार नहीं होता।

८— स्वप्नसे भूतकालके समाचार, भविष्यकी सूचना अथवा वर्तमानके दूरस्थ वृत्त नहीं जाने जा सकते। क्योंकि स्वप्न एक कल्पकी सृष्टिके समान होता है अतः जिस प्रकार हम पूर्व कल्पकी सृष्टिका हाल नहीं जान सकते इसी प्रकार स्थूल सृष्टिके भूत तथा भविष्यकालके समाचारोंसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

९— स्वप्नमें इहि लौकिक दृश्य दीखनेके अतिरिक्त अलौकिक दृश्य कोई नहीं दीखते जिन दृश्योंके संस्कार इस लोकमें पडे हुए हैं कि स्वर्गमें रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंके पर लगे होते हैं तो इसी प्रकारके देव और परियां आदि दीखने लगते हैं जो केवल इसी लोकके संस्कार जन्म होते हैं।

१०— स्वप्नमें हमारे देखे जानेवाले दृश्यों और हमारे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वप्न शरीरके चित्र नहीं लिये जा सकते हैं। क्योंकि स्वप्न देखे जानेवाले दृश्य भौतिक नहीं होते और चित्र केवल भौतिक पदार्थोंके ही लिये जा सकते हैं।

११– स्वप्न देख चुकनेपर, जागनेपर उनकी स्मृति इस लिये रहती है कि स्वप्न सृष्टि मनसे उत्पन्न होती है और वही मन जाग्रतमें भी होता है परन्तु जाग्रतके अन्नमयकोष तथा भौतिक पदार्थ स्वप्नमें नहीं होते इसलिये जाग्रत अवस्थाका ज्ञान स्वप्नमें नहीं रहता।

१२– निःस्वप्न निद्रामें (सुषुप्तीमें) स्वप्न द्रष्टाकी दशा इंद्रियसे अजन्य सुखाकार वृत्तिकी होती है। और वह इंद्रिय तथा विषयोंके अभावके कारण स्वप्न नहीं देखता।

१३– शरीरकी अधिक थकान दूर करनेकी दवा, सुषुप्ति है और कम थकान दूर करनेकी दवा स्वप्न है, इसलिये स्वप्न शरीरकी कम थकानमें ही होते हैं अधिक थकानमें नहीं होते।

१४– स्वप्न कभी न हों या लगातार हों इसका कोई साधन नहीं है, क्योंकि आयु पर्यन्त जीवनकी क्रिया चलती रहती है, उसकी आवश्यकतानुसार स्वप्न व सुषुप्तीकी क्रियाएं भी होती रहती हैं।

१५– स्वप्नकी दशामें मन शरीरसे भिन्न नहीं होता वह शरीरके कण्ठ देशमें ही सम्पूर्ण स्वप्न सृष्टिकी रचना करता है, अतः शरीर छोड दूरस्थ लोकोंकी यात्रा न करते हुए कण्ठ देशमें ही सब लोकोंकी रचना करता है क्योंकि– 'बाहर लिंग जोनिकसे देह अमंगल होय' (विचार सागर) यदि स्वप्न द्रष्टा शरीरसे बाहर निकल जावे तो शरीरकी मृत्यु हो जायगी, इसलिये वह जीवन पर्यन्त शरीरसे बाहर नहीं जा सकता। मनका स्वरूप निरवयव है।

१६– निःस्वप्नावस्थामें मनकी क्या दशा होती है प्रश्न १ के उत्तरमें बताया जा चुका है कि वायु संचार रहित स्थानमें दीपककी लौके समान मन चंचलता रहित होकर सुखानन्दका अनुभव लेता है।

१७– स्वप्न काल कितने समयतकका होता है इसका कोई प्रमाण नहीं है– शरीरकी थकानके अनुसार स्वप्न न्यूनाधिक कालमें होता रहता है।

१८– जिस प्रकार बीमारीमें कभी एक कभी दो कभी तीन या अनेक बार भिन्न भिन्न प्रकारकी मीठी व कडवी एवं कष्टप्रद ओषधियां दी जाती हैं, इसी प्रकार शरीरकी थकान रूपी बीमारी दूर करनेके लिये स्वप्न भी कभी एक कभी दो कभी तीन या अनेक और भिन्न दृश्यवाले, कोई आनन्ददायी कोई भयानक एवं कष्ट प्रद होते हैं।

१९–मनुष्येतर प्राणियोंको स्वप्न नहीं आते क्योंकि मनुष्यों को ही आत्मज्ञानकी प्राप्तीके लिये स्वप्न व सुषुप्ती अवस्थाका निर्माण किया गया है, इसलिये पशुपक्षियों आदिमें बुद्धि एवं विज्ञानमय कोषकी विशेषता नहीं रखी गई है।

२०– सत्यवादी– हरिश्चन्द्रने विश्वामित्र मुनिके मांगनेपर राज्य दे दिया और स्वयं देशसे निकल गये। प्रथम तो यह कथा काल्पनिक मालूम होती है। यदि इसे सत्य ही मान-लिया जावे तब भी स्वप्नका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि दूसरेके प्रयोग द्वारा स्वप्न होना असंभव है। इस लिये यह क्रिया संमोहिनी विद्याके द्वारा हो सकती है संमोहिनी विद्या मेस्मेरिज्मकी तरह होती है– जिस प्रकार मेस्मेरिज्ममें प्रयोगकर्ताको 'आमिल' और जिसपर प्रयोग किया जाता है उसे 'मामूल' कहते हैं और आमिल, अपने नेत्रोंकी विद्युत शक्तिके द्वारा मामूलको अर्धनिद्रित कर देता है व उससे जो कुछ चाहे कहलवा लेता है। आमिल दूसरेसे नोट लेकर उसके नंबरको देखता हुआ मामूलसे उसका नंबर बतानेके लिये कहता है तो वह मामूल उस नोटका नंबर शीघ्र बता देता है। इसी प्रकार विश्वामित्रजीने अपनी विद्युतके द्वारा राजा हरिश्चन्द्रको अर्ध-निद्रित करके उससे राज्यको दानमें देनेके लिये कहलवा लिया हो तो ऐसा हो सकता है। किन्तु इस क्रियासे स्वप्नका कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि ये क्रिया भौतिक है और स्वप्न अभौतिक है।

२१– जाग्रत संसार और स्वप्न संसार दोनोंके स्थाई-पनेमें अपेक्षता है यानी स्वप्नके समय स्वप्न संसार स्थाई प्रतीत होता है परन्तु जाग्रत संसारमें आनेपर वह अस्थाई सिद्ध हो जाता है इसलिये जाग्रत संसारकी अपेक्षासे स्वप्न संसारकी सत्ता अस्थाई और जाग्रत संसारकी सत्ता स्थाई है परन्तु ये दोनों सत्ताएं परिवर्तनशील होनेके कारण स्वरू-पसे सत्य न होते हुए प्रवाहसे सत्य हैं।

२२– जाग्रत शरीर चेतना, और स्वप्न चेतनाके शरीरके तत्वोंमें यही अन्तर है कि जाग्रत शरीरकी चेतना भौतिक तत्वोंकी व स्वप्न शरीरकी चेतना अभौतिक एवं मानसिक होती है।

२३– पाश्चात्य विज्ञानके अनुसार आजकल स्वप्नको वासना मूलक तो कह सकते हैं परन्तु प्रतिबिम्बके रूपमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं कह सकते और स्वप्नमें जो कुछ दृश्य देखते हैं वह केवल भौतिक जगत्के देखे हुए ही दृश्य होना चाहिये यह भी नियम नहीं है क्योंकि देखे हुए, सुने हुए, स्पर्श किये हुए, स्वाद लिये हुए, गंध लिये हुए तथा सोच-विचार किये हुए इत्यादि अनेक प्रकारके संस्कारोंसे स्वप्न सृष्टि उत्पन्न होती है इसलिये स्वप्न सृष्टिका प्रत्येक दृश्य किसी न किसी ज्ञानइंद्रिय द्वारा सोचा हुआ ही होता है।

२४- स्वप्नमें अलौकिक विचित्र दृश्य दिखते हैं उनका मूल स्रोत्र अन्य लोकोंकी कथा सुनना तथा वहांकी काल्पनिक तस्वीरोंको देखना तथा उन पर विचार करना आदि है।

२५- अलौकिक दृश्य केवल काल्पनिक सुने तथा देखे हुए चित्रोंके आधार पर दीखते हैं इससे भिन्न उन लोकों, घटनाओं, वस्तुओं और व्यक्तियोंकी कोई सत्ता नहीं होती है।

२६- अलौकिक दृश्योंके स्वप्नोंकी रचनाको अन्तःकरण स्वतंत्र रूपसे करता है इसमें किसी अज्ञान लोककी प्रेरणा-किसी प्रकारकी नहीं होती।

२७- मानसिक कमजोरी, उद्वेग, मूढ, अवस्था, मृगी, अपस्मार, मूर्छा, अथवा अन्य मानसिक अव्यवस्थित, विकृतिकी दशामें जो लोग बातें या बक-बक करते हैं, उस चेतनामें और स्वप्नकी चेतनामें यही अन्तर है कि उपरोक्त सब प्रकारकी चेतना भौतिक होते हुए अन्नमय कोषके अन्तर्गत होती है। और स्वप्नकी चेतना अभौतिक होते हुए मनोमय कोषके अन्तर्गत होती है।

२८- जीवनकी विभिन्न आयु, शारीरिक और मानसिक दशाओंके अनुसार स्वप्नमें भिन्नता होनेका कारण यह है कि उत्तर क्रमांक २१ के अनुसार शारीरिक और मानसिक आयुकी अपेक्षासे स्वप्न सृष्टि अत्यंत अस्थाई एवं स्वल्पकालिक होती है, और स्वप्नकी अपेक्षासे शारीरिक आयु दीर्घकालिक होती है।

२९- उत्तर क्रमांक १५ के अनुसार स्वप्नलोक शरीरके कण्ठ देशमें होता है।

३०- सुषुप्ति लोक शरीरके नाभि देशमें होता है।

सूचीपत्र मंगवाइये] **वेदकी पुस्तकें** [ग्राहक बनिये

	मूल्य रु.		मूल्य रु.
ऋग्वेद संहिता	१०)	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)
यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता)	४)	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)
सामवेद	३)	अग्नि देवता मन्त्र संग्रह	६)
अथर्ववेद	६)	इन्द्र देवता मन्त्र संग्रह	७)
(यजुर्वेद) काण्व संहिता	५)	सोम देवता मन्त्र संग्रह	३)
(यजुर्वेद) मैत्रायणी संहिता	१०)	मरुद्देवता मन्त्र संग्रह	२)
(यजुर्वेद) काठक संहिता	१०)	दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६)
(यजुर्वेद) तैत्तिरीय संहिता, कृष्ण यजुर्वेद	१०)	सामवेद कौथुम शाखीयः ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	६)
यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)		

मूल्य के साथ डा. व्य., रजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मंत्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भागवत प्रेम

लेखक— श्री वसिष्ठ

⊙

'पवित्र और निष्काम, तेरा वह प्रेम जिसे हम अनुभव तथा व्यक्त कर सकते हैं, तेरी खोजमें हृदयोंको खोलनेके लिये एक मात्र कुंजी है। जो बौद्धिक मार्गका अनुसरण करते हैं वे ऐसा विचार बना सकते हैं जो अत्यन्त उच्च तथा सत्य हो; वे समझ सकते हैं कि सत्यजीवन अथवा वह जीवन जो तेरे संग एक हो चुका है, क्या है। परन्तु उन्हें उसका 'ज्ञान' नहीं; उन्हें इस जीवनका आन्तरिक अनुभव नामको भी नहीं होता और वे तेरे साथ हर प्रकारके सम्पर्कसे अनभिज्ञ हैं। जो लोग तुझे बौद्धिक रूपमें जानते हैं और क्रियात्मक दृष्टिसे अपनी मानसिक रचनामें, जिसे वे सबसे अच्छी मानते हैं, बन्द हैं, उनका परिवर्तन सबसे अधिक कठिन है। उनमें भागवत चेतना जागरित करनेमें बहुत कठिनाई होती है। केवल प्रेम ही यह चमत्कार साधित कर सकता है, क्योंकि प्रेम सब किवाड खोल देता है। सब दीवारें भेद डालता है, सब बाधाएं पार कर जाता है। तनिक सा सच्चा प्रेम अच्छेसे अच्छे उपदेशसे अधिक काम करता है।'

'हे प्रभु! मेरे अन्दर इसी प्रेमका फूल प्रस्फुटित कर दे, जिससे जो भी हमारे समीप आवें उन सबको वह सुगंधित कर दे और वह सुगंध उन्हें पवित्र बना दे'।

'इसी प्रेममें है शान्ति और आनन्द, सारी शक्ति और उपलब्धिका स्रोत। यह अचूक वैद्य है, परम संतोष प्रदाता है; यह विजेता है सर्वोच्च शिक्षक है।'

'हे प्रभु! मेरे प्रिय स्वामी! तू, जिसकी मैं मौन भाव से पूजा करती हूं तथा जिसके प्रति मैं पूर्णतया समर्पित हूं, और जो मेरे जीवनका शासक है, मेरे हृदयमें अपने पवित्र प्रेमकी ज्योति जगा ताकि वह तीव्र ज्वाला बन कर जल उठे और सब अपूर्णताओंको भस्म कर दे; अहंकारकी मृत लकडीको तथा अज्ञानके काले कोयलेको सुखदायी ताप और चमकते प्रकाशमें परिवर्तित कर दे'।

'हे नाथ! मैं ऐसी भक्तिके साथ, जो एक साथ प्रसन्नतापूर्ण तथा गंभीर है, तेरे अभिमुख होती हूं और याचना करती हूं कि—

तेरा प्रेम प्रकट हो,
तेरा राज्य स्थापित हो,
तेरी शक्ति संसार पर शासन करे।

(श्रीमाताजी)

बुद्धिवादी तार्किक प्रायः कहा करते हैं, 'मनुष्यको सत्यभाषी, सत्यकर्मी, परोपकारी, सभ्य, शिष्ट व नैतिक नागरिक होना चाहिये फिर ईश्वर उपासना, भगवत् भक्ति या ईश्वर प्रेमकी क्या जरुरत है? क्या ईश्वर हमारी तरह खुशामद पसन्द है जो अपनी खुशामदकी अपेक्षा रखता है'?

सत्य भाषण, सदाचार, सभ्य, शिष्ट नागरिकताका जहां तक सम्बन्ध है बुद्धिवादी ऐसा विचार बना सकते हैं किन्तु जैसे बिना धूपमें जाये, उसका सेवन किये बिना धूपके गुण व लाभ नहीं मिल सकते, स्वादु मिठाईको चखे बिना जैसे उसके गुण व लाभको नहीं प्राप्त कर सकते तैसे ही बुद्धिवादियोंके केवल सत्य भाषण सदाचार, सभ्य, शिष्ट नागरिकता आदिके सब शिष्ट व्यापार ईश्वरकी उपासना (पास पहुंचना) श्रद्धा, भक्ति, प्रेमको प्राप्त किये बिना भागवत प्रेमकी अनुभूति व सुख कल्याणको नहीं प्राप्त करा सकते।

पार्थिव पदार्थोंमें जिस प्रकार मौल, सार, सद्वस्तु स्नेह (तैल, वसा, घृत) है उसी प्रकार चेतनामें 'प्रेम' ही मौल सार, सद्वस्तु है। किन्तु जिसे इस सद्वस्तुकी चाह नहीं है, जिसका पशु-सरीय जीवन इसे सार तत्वकी अनुभूति व उपलब्धिके बिना सांस ले रहा है उसे भले ही मूलकी, सारकी, सत्वकी अन्तरतमकी अभी चाह न हो जो इस श्वास-धारणाके मूलमें भी लुका, छुपा क्षीण सा यह 'प्रेम' ही है जो टिम-टिमा रहा है और जिसने मलीनतामें मिल मलिन सा होकर ममताका विकृत रूप ले लिया है जिस-तिसके व्यक्तित्वमें—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समस्त हमारी धरा चलती शांदसे व होती समाप्त गगनमें,
तथा 'प्रेम' जो था एकदा ईहा[2] तिर्यक[3] की,
पश्चात् एक मधुर मूढ़ता[4] हर्षोन्मत्त हियमें,
किसी मन प्रसन्नमें, एक प्रचण्ड व्यग्र साहचर्य,
बन जाता उरु[5] आध्यात्मिक स्पृहा[6]का आस्पद[7]।

\+ + +

एक एकाकी अंतरात्मा करता चाह 'एकमेव' हेतु,
हृदय, जिसने चाहा मनुज, पुलकता 'ईश'-प्रेम प्रति,
एक शरीर है उसकी चन्द्रशाला व उसका देवायतन।

\+ + +

तब की जाती सत्ता हमारी विमुक्त पृथकतासे;
सकल है स्वयं आप, अखिल अभूर्त-अनुभूत 'ईश' में।
एक 'प्रेमी' झुककर द्वारसे निज विहारके
बटोरता यह अखिल जगत् निज एकल अंतःकरणमें।

\+ + +

प्रेमशाश्वत, अभिषिक्त विराजता 'ईश-प्रसाद' पर;
क्योंकि उडना अवश्य 'प्रेम' को ठीक स्वर्गोंके पार
और पाना अवश्य निज निभृत अभि प्राय अकथ्य;
तिसे बदलते हैं दिव्य उपायोंमें उपाय मानुषी अपने,
तथापि रखना निज प्रभुत्व ऐहिक आनन्द का।

\+ + +

'प्रेम' को थमना नहीं है जीनेसे जगती पर;
क्योंकि 'प्रेम' है उज्वल सन्धि द्यावाभूमि मध्ये,
'प्रेम' है अन्तरवर्ती 'परात्पर' का देवदूत यहां;
'प्रेम' है स्वत्व, स्वाम्य मनुजका परब्रह्म परमेश पर।

(सावित्रीसे)

\+ + +

किन्तु जो जन कार्यमें कारणसे, वृक्षमें बीजसे संयुक्त व प्रेरित होनेको उत्सुक हैं; वे मूलको खोजते व पाते हैं और तब वे देखते हैं कि सचर प्राणी-जगत ही नहीं अपितु अचर जड जगत भी इस मौल प्रेमसे कृतार्थ हो रहा है जैसा कि सूक्ष्म जगतको देखनेवाली बाला ऋषि सावित्री देखती है द्युमत्सेनके आश्रमके चतुर्दिश विद्यमान कान्तारकी प्रत्येक चर-अचर सत्ताको ओत-प्रोत भागवत प्रेमसे और देखती है कि यह 'प्रेम' की ही मुस्कान है जो हर चर-अचर सत्तामें सौन्दर्यसे शृंगार किये हर्षका गीत गा रही हैं, आह्लादका नृत्य कर रही है—

एक प्रदेशमें आयी यह मृदु, मंजु मुद्राके
जो प्रतीत भया एक देवस्थान हर्ष यौवनका,
निर्विघ्न, अभिनव आह्लाद का एक पर्वतीय जगत
जहां वसंत और निदाघलिटे साथ करते चेष्टा
निरुद्योग, अलस और स्नेहशील वाद-विवादमें
आलिंगित झगडते सहास्य कौन प्रशासन करे।

× × ×

तन्त्र प्रत्याशा ने फडफडाये पृथु चंचल गरुत,
मानो एक अंतरात्मा ने झांका अपनी-आननसे
और सर्वने, जो था इसमें, किया अनुभव सामान्य स्वप्न
व विसरते हर्ष स्पष्ट तथा एक आता परिवर्त,
आत्मा के भाग्य व 'काल' की पुकारप्रति आज्ञाकारी,
जो किये उद्गीत गये एक शान्त विशुद्ध शोभा ओर
रहती थी लोचनों नीचे जो 'नित्यता' के।

× × ×

सपर्वत शिखरोंके समूहने धावा किया गगन पर
धकेल कर सपत्न स्कन्धों ओर स्वर्गके समीप तर,
जो थे कंचुकित मुखर एक लोह-परम्पराके;
प्रणत पृथिवी पडी उनके प्रस्तर[10]-पदों तले।

× × ×

नीचे वहां प्रणत पडा एक स्वप्न मरकत अरण्यों
तथा दमकते उपान्तोंका निद्रा तुल्य एकान्तः
विवर्ण उदक धाये मुक्ताओंके झिलमिल तन्तुओं तुल्य।

× × ×

टहलता था एक उच्छ्वास प्रसन्न पर्णों मध्ये;
मंद मुदा-भाराक्रान्तपदों द्वारा शीत-सुवासित
मंद ठेस खाती मंदानिल लड खडाई पुष्पों मध्ये।

× × ×

शुक्ल सारस खडा था, एक सुस्पष्ट गतिशून्य राजि,
रत्नभूषित किये थल औ तरु कलापी[11], किंकिरात[12] ने,
पारावतके मृदु आर्तरवने किया समृद्ध समीर सानुराग
तथा प्रभा-पंखी वन्य कलहंस तिरे रजत-पल्वलों में।

× × ×

---

१ पंक, २ इच्छा, ३ पशु, ४ पागलपन, ५ विशाल, ६ उत्कंठ, ७ स्थान, ८ नवीन, ९ पंख, १० पत्थर, ११ मोर, १२ तोता।

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसुधा अकेली सोई निज श्रेष्ठ वल्लभ 'वैकुण्ठ' साथे,
अनाच्छादित[1] निज सहवासीके नीलारुण नेत्र प्रति ।

× × ×

अपने विलासमय उत्सवके अत्यानन्दमें
लुटा दिया इसने अपने स्वरोंका प्रेम-संगीत
नष्ट किया निज पुहुपोंका प्रतिरूप अनुरागमय
तथा तुमुलोत्सव निज परिमलों व रागरंगों[2]का ।

× × ×

एक गोहार व फलांग व हडबडी चहुं ओर थी,
प्रच्छन्न पदपात इसके अहेरते प्राणियोंके,
लोमश मरकत इसके हयनर, किन्नर केशर का,
स्वर्ण और नीलोपल इसके उत्साह व दीप्तिके ।

× × ×

मायाकार इसके हर्षोन्मत्त सुख, कल्याणों का,
प्रमुदित, इन्द्रियासक्त-हृदयी, निरपेक्ष और दिव्य,
जीवन दौडा या छिपा इसके सुखद आस्पदोंमें;
झुका, झूमा अखिल पीछे 'प्रकृति' का प्रतापी प्रसाद ।

× × ×

आद्य शान्ति थी वहां और वक्षमें तिसके
अक्षुब्ध समाविष्ट था द्वन्द्व खग और मृगका ।

× × ×

नहीं पधारा था वह गभीर-ललाट शिल्पकार मनुज
स्थापने निज हस्त धन्य, सुखी अचेत वस्तुओं पर,
विचार या नहीं तहां, न मापक, ओजस्वी लोचन आयास,
नहीं था सीखा निज विरोध जीवनने निज लक्ष्य साथे ।

× × ×

सब था क्रममें इसके आद्य तुष्ट सूत्रपात साथे;
हर्षके एक सर्वगत संकल्प द्वारा प्रेरित
भये विकसित वृक्ष निज पलाश[3] परमानन्दमें
तथा वन्य वत्स झुके झूमें नहीं परिताप पर ।

× × ×

अन्त पर था तकिया किये एक निठुर, भीम भूभाग
संकुल गाढताओं तथा पवित्र सांशक शैलपादों[4],
शिखरों का, अन्तरात्माके एक नग्न तप तुल्य,
कंचुकित, दूरस्थ तथा निर्जनतः महान
विचार-आच्छादित अनन्ताओं समान स्थित जो
'सर्व-प्रतापी' के नृत्यकी हर्षोन्मत्त स्मितें[5] पीछे ।

× × ×

एक संकुल विपिन-शीशने किया आक्रान्त गगन
मानो जैसे भया प्रकट एक नील-कंठ सन्यासी
दृषद[6]-दृढता ओर से निज पर्वत-कुटीरकी
निरखता हुआ संक्षिप्त आह्लाद वासरोंका;
रहा शय्या शायी पीछे विशाल वितत[7] आत्मा उसका ।

× × ×

एक प्रबल कलरव ने अमित अपर्यान की
लिया घेर कान, एक विषण्ण व सीमारहित आह्वान
मानो संसार त्यागते एक अन्तरात्मा का ।

× × ×

यहां थे किये गये प्रकट रहस्य प्रांगण इस प्रति,
निभृत द्वार सौन्दर्य और विस्मय के,
गरुत[10] जो गूंजते गाङ्गेय[11] गेह, स्वर्ण-सदनमें,
जो मन्दिर माधुर्य का तथा आग्नेय पथ-मार्ग ।

× × ×

एक अभ्यागत, शोकाकुल सरणियों पै 'काल' की,
अनश्वर, मृत्यु और दैव के जुवे अधस्तात्,
एक याजक मण्डलोंके आनन्द और पीडा का,
कान्तार विजनमें 'प्रेम' मिला सावित्रीसे । ❀

× × × (सावित्री)

---

१ नंगी, २ छवियों, ३ अभिनव हरे भरे, ४ पहाडियों, ५ मुस्कान, ६ पत्थर, ७ फैला हुआ, ८ एकान्तता, ९ स्थान गभीर, १० पंख, ११ स्वर्ण ।

❀ श्री अरविन्दकृत अंगरेजी काव्य 'सावित्री'से अनूदित ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अगम्य पंथके यात्रिकको आत्म-दर्शन

[२]

मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप कैसा है ?

लेखिका— चंचलबहिन माणिकलाल पाठक, प्रधाना आर्यसमाज, टंकारा, (सौराष्ट्र)

हम स्वयं कौन हैं ? हमारा स्वरूप कैसा है ? हम कहाँसे, किस रीतिसे, किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं ? अब वापस किस कारणसे, कौनसे स्थलपर, किस रीतिसे जायेंगे ? इस बातका विचार और निर्णय ही जीवनका प्रथम ध्येय होना चाहिये।

मैं कौन हूँ ? मुझमें कितना सामर्थ्य है ? वह कहाँसे आया ? किसने दिया और किसका आभारी मुझे होना चाहिए ? मेरी स्थिति, स्वरूप, स्थान, शक्ति, सामर्थ्य, गति, मुक्तिसे जानकार होनेका प्रयास करना यही मेरे जीवनका महान् अंतिम लक्ष्य है। स्वयम्को जान लेना तत्पश्चात् निकटवर्ती परमात्माका परिचय प्राप्त करना तुलनात्मक विवेक बुद्धिसे यथाशक्ति साध्य होना चाहिए।

जाति, धर्म, या शारीराकृतिके सम्बन्धमें हमारी पहिचानका यहाँ प्रश्न नहीं है, परन्तु शरीर रथको अद्भुत आन्दोलन देकर विविध गतिसे चलानेवाला और अमुक समयपर शरीरके सर्व व्यापारों, प्रवृत्तियोंको हमेशाके लिये संकलन करके उसको जड स्थितिमें रखनेवाला कौन है ? आत्मा अथवा जीवात्मा, यही जवाब है तो इस जीवात्माका अन्दर बाह्य स्वरूप कैसा है ? अमुक शरीर और स्थलके साथ संयोग कौनसे समय उपस्थित हुआ और लय कैसे हुआ वगैरह जीवनकी स्पर्शता खास उपयोगी विषय पर यथाशक्ति प्रकाश डालना आत्माका धर्म है।

प्रथम अपनेको जानना चाहिए, और फिर परमात्माको किन्तु आत्मा और परमात्मदर्शन इन्द्रियोंका विषय नहीं है, वह बुद्धिगम्य है। अतएव मनोमंथनसे अपनी आत्मामें उठती लहरीयोंद्वारा जीवात्माके स्वरूप, सुख, दुःख और जीवन यात्राकी यथाशक्ति समीक्षा करनी चाहिए।

मनुष्यसे मनुष्य, पशुसे पशु, पक्षीसे पक्षी उत्पन्न होते हैं। इसी रीतिसे अनेक विध वनस्पति बीजानुसार पैदा होते हैं। यह हमेशाके क्रम कम बुद्धिवालेको सामान्य दीखते हैं, परन्तु थोडी गहराईमें उतर कर विचार करेंगे तो जगत् नियंताकी अद्भुत रचना, कला, कौशल्य और अगाध बुद्धि शक्तिका थोडा दर्शन अवश्य होता है। तब ही सामान्य विषयोंकी विशेषता किंचित् ख्यालमें आती है। तोभी मनुष्यकी परिमित बुद्धिके लिये तो वह अधूरा और अस्पष्ट ही रहता है। कारण विषयको उसके पूरे और सत्य स्वरूपमें उसके कर्ताके बिना और कोई समझ सके ऐसा संभव नहीं। मनुष्य प्रश्नकी परंपरामें धोखा खाते हुए जिज्ञासा वृत्तिकी तृप्तिके लिये अन्धेरेमें इच्छित वस्तुके दर्शनकी खोजमें विचरते दिखाई देते हैं।

मैं और मेरा शरीर ऐसा सब कहते हैं। पर मेरा शरीर किस रीतिसे बना और मैं कौन हूं और मेरा स्वरूप कैसा है ? वह इस चर्म चक्षुसे हम देख नहीं सकते। बुद्धि और बुद्धिमान ऐसा कहते हैं कि मैं एक अति सूक्ष्म परमाणु हूँ और किसी द्रव्यमेंसे नहीं बना, या मुझे किसीने नहीं बनाया। मुझको बनानेवाला यदि कोई है तो वह मैं ही हूँ और जगत्में अनेक विध परिश्रम और भाग दौड करता हूँ। कितना आश्चर्य ! तब प्रश्न यह होता है कि 'मैं' इस शरीरके अन्दर बसा हुआ शरीर पुरीका स्वामी देहरूप महान् मंदिरका महंत एक परमाणु कि जिसको हम जीवात्मा अथवा आत्माके नामसे समझते हैं वह है या कि यह मेरा दृश्य शरीर ? आत्मा रूप सूक्ष्म परमाणु सचमुच क्या है कि जिसके द्वारा देहधारीकी विविध प्रवृत्तियां देखनेमें आती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरीरस्थ आत्माकी अनेक विध प्रवृत्तियां किस रीतिसे होती हैं ? कहांसे और किसी रीतिसे उद्भव होती हैं ? और फिरसे कहां घुस जाती हैं ? बल्कि उसमें भी न्यूनाधिकता नजर आती है वह ऐसी रीतिसे कि मनुष्य, पशु, पक्षी, पतंग और जलचर प्राणी जो विविध प्रकारकी वस्तु बनाते है तथा व्याघ्र, सिंह, सर्प आदि हिंसक प्राणी रूप अनेक विधयोनियोंमें बसी हुइ आत्माओंकी शक्ति, सामर्थ्य समान देखनेमें नहीं आते, मनुष्य योनिमें भी कोई एक धार्मिक तो कोई दिगन्तको गर्जानेवाले महर्षि दयानन्द और माहात्मा गान्धीजी जैसे जन समाजको अन्धकारमेंसे प्रकाशमें लानेवाले मार्गदर्शक नेता। वैसे ही समर्थ सम्राटोंकी नाक पकडकर खींचनेवाले बलवान नेपोलियन, हिटलर जैसे साहसी शूरवीर, तो कोई रास्तेपर भटकता, अन्न वस्त्रके लिये चिल्लाता, समाजकी दृष्टिसे तुच्छ घृणित दीन, हीन, दुःखी, दरिद्र, अपमानित आत्मा है। तब कोई विद्वान् तो कोई मूर्ख, कोई राजा तो कोई रंक विगेरे सर्वत्र दीखनेवाली असमानता कहांसे आती है ? कहां और किस रीतिसे, कौनसे स्वरूपमें, कौनसे स्थानमें समाविष्ट होती है ? कोई श्रेष्ठ शक्ति अथवा हमारी मान्यता अनुसारकी महान् शक्ति परमात्माने ऐसी विरुद्ध विरुद्ध स्थितियोंको उत्पन्न किया है या उन्नत अथवा अधम स्थितिका उत्पादक मैं स्वयं ही हूं ? है कोई समर्थ जो संपूर्ण समाधान दे सके।

अपने आप ही खोज करनी चाहिए, शान्तिसे आत्माकी गहराईमें उतर कर मनोमंथन करनेसे सब प्रश्नोंका उत्तर सब विचारोंका निर्णय अपने स्वयंके प्रयत्नसे मिल जायगा। मनकी स्वस्थता, चित्तकी एकाग्रता, खोज करनेकी पूरी भावना और लगन दिलमें लगी होनी चाहिए। ऐसा होनेसे आत्मदर्शन थोडा बहुत अवश्य प्राप्त सकेगा।

अगम्य पंथके यात्रिकको 'आत्म दर्शन' अपने पहिचानके साथ परमात्माका परिचय पानेके लिये ही है। परमात्माका साक्षात्कार करनेके लिये है।

[३]

आत्माका निवासस्थान और आत्मविहार

नहानेका, धोनेका, खानेका, पीनेका, गानेका, गिनतीका, निद्राका, रक्षणका, स्नेह सौजन्यका, दया, परोपकार और परमात्माकी भक्तिका कार्य कौन करता है ? मानसिक अवयव या मानसिक अवयवके अन्दर प्रसारित हुए ज्ञानतंतु और क्रियातंतु करते हैं या आत्मा करती है ? मानसिक अवयव अथवा तंतु करते हैं ऐसा कहें तो मृत्युके पश्चात् वह कोई क्रिया नहीं कर सकते ऐसे अनुमानानुसार मस्तिष्कके अभावसे आत्मा अकेला भी कुछ क्रिया या अनुभव नहीं कर सकता। अन्धे मनुष्य मस्तिष्क और आत्माके होनेपर भी देख नहीं सकते, आंखपर पटलका आच्छादन आ जानेसे दर्शन तंतु, आत्मा और प्रकाश तीनों वस्तु दर्शनके लिये व्यर्थ साबित होते है।

शरीर और आत्माके संयोगके बिना परस्परकी सहाय और सहकारके अभावमें अकेला शरीर या अकेली आत्मा कुछ भी कार्य करनेमें अशक्त है।

मानसिक स्थूल स्थान और शरीर तो जड और नाशवंत है। हम हाथसे ही उसके अणु परमाणु अलग अलग कर देते है। अग्निमें जलाकर भस्म बना देते हैं। बाकी रहा आत्म धन, वह तो अदृश्य है, उसकी गति मुक्तिकी हमको कोई जानकारी नहीं। बुद्धिके अंदाज पर आधारित है। तब सुख दुःखका भोक्ता और कर्मका कर्ता किसको मानें ? क्रियाका उद्भव स्थान कौन है ? किसी भी क्रियाके लिये इच्छा आत्मामें उद्भव होती है। जाननेकी इच्छा अथवा ज्ञानके साथ गति भी आत्मामें ही होनी चाहिए।

आत्माका स्थान मानस शास्त्र मस्तिष्कमें है ऐसा कहता है। मस्तिष्ककी मध्यमें मध्यबिंदु जिसको हम ब्रह्मरन्ध्रके नामसे समझते हैं, वह आत्माका निवासस्थान है। आत्माके इसी निवासस्थानमें मानसिक तथा शारीरिक सब व्यापारोंको करनेवाले ज्ञानतंतु और क्रियातंतु आये हुए हैं। इस तंतु जालके मध्यमें आत्मदेव बिराजते हैं। उसमें उनके टहलने (घूमने, फिरने) के लिये रिक्तता है, यह रिक्तस्थान (खाली–आकाश) पांच हिस्सेमें बंटा हुआ है, उसको जवनिका कहते हैं। इस जवनिकामें एक तरहका तरल पदार्थ भरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। ये जवनिकाकी दिवारें ज्ञानतंतु तथा क्रियातंतुकी बनी हुई हैं और ज्ञानतंतु तथा क्रियातंतुके मुख जवनिका के रिक्तमें रखे हुए है ऐसा मानते हैं- समझते हैं।

यह तंतु सब स्वरूपमें एक शरीरपर देखनेमें आते हैं तथापि अलग अलग कार्यके लिये योजाये हैं और उसकी रचना इनके कार्यके योग्य बनाई हुई है। शरीरमें जाते आते सन्देशके अनुसार तंतु जालके मध्यमें बैठा हुआ आत्माराम अपने इच्छित विषयके संसर्गमें आता है अर्थात् वह विषयके साथ सम्बन्ध रखता है, और तंतु प्रदेशके पास जाकर इस विषयका आस्वाद लेता है। अतएव अपनी इच्छानुसार नहानेके, खानेके, गानेके, गिनतीके, स्नेह, या सौंदर्यके, प्रभु भक्तिके, धन प्राप्तिके तंतु प्रदेशको इलेक्ट्रीक करंटके अनुसार स्पर्श करनेके साथ उस क्रियाकी आंतर बाह्य प्रकटता आत्मा अनुभव करती है। उस उस तंतु प्रदेशमें आन्दोलन और गति उद्भव होकर वे क्रियायें बाह्यान्तर प्राकट्य और परिणामको पाती हैं।

आत्माका निवास स्थान कितनेक लोग हृदयमें मानते हैं। किन्तु छातीकी पोलमें जो रक्त पम्प हृदय है वह तो रक्तका भ्रमण करानेवाला अवयव है। ऐसी मान्यताके स्थान पर मस्तिष्कके मध्य भाग रूप ब्रह्म हृदयमें आत्म देवकी प्रतिष्ठा माननी वह विशेष अनुकूल और उचित है। कारण शारीरिक और मानसिक सब प्रकारकी प्रवृत्तियोंका करना, हिलना चलना, विचारादिका स्थान मस्तिष्क है। इसलिये मस्तिष्क रूप साधन द्वारा होनेवाली क्रियाका करानेवाला भी उसी स्थानमें होना चाहिए ऐसा स्पष्ट होता है।

शरीर पुरीके मस्तिष्क मंदिरमें आत्मदेवकी स्थापना सर्वोपरि सत्ता ईश्वरके आधीन मानें तो जीवात्मा जिस स्थानमें बैठी है उस मस्तिष्ककी रचना और उसके अलग अलग प्रदेश, उसके कार्य और उसके उपयोगकी जानकारी जीवात्माको किसने दी? योजककी योजना और उसका उपयोग उसको किस रीतिसे समझमें आया? अर्थात् अमुक प्रदेश खानेकी क्रियाके लिये है और अमुक प्रदेश देखनेकी क्रियाके लिये तथा अमुक स्नेह और सौन्दर्यके लिये है। अमुक स्नान विधिके लिए है। यह तो बुद्धि, भक्ति भाव और औदार्य तथा अध्यात्मरतिको प्रकट करनेवाला प्रदेश है इत्यादि जीवराजने कैसे जान लिया?

अमुक मानसिक अवयवके पास स्वयं रहकर वह क्रियाको कराता है ऐसा मान लेवें तो एक मनुष्य जो निद्रा नहीं आनेसे दुःखी होता है, प्रभुसे प्रार्थना करता है और अपने आपको सलाह देता है कि मैं अब लेट जाता हूँ, मुझे निद्रा आती है, मैं गाढ़ निद्रामें हूँ। ऐसी रीतिसे अनेक प्रार्थना करता है और यातना सहता है, तो भी निद्रा नहीं आती, निद्रा बिना दुःखी होता है तो जीवात्मा अपनी जवनिका रूप एक शान्त कमरेमें रहकर आराम क्यों नहीं लेता? उसे ऐसा करते हुए कौन रोकता है? अनिद्रा (जाग) के सख्त दुःखसे कौन दुःखी होता है? निद्राके लिये कौन तडपता है यदि आत्मा स्वयं ही तडपती है और स्वयं ही मस्तिष्कके सब प्रदेशसे परिचित है, स्वयं ही अपनी इच्छासे सब क्रिया करती है, तो निद्राकी संपूर्ण इच्छावाली आत्मा किसलिये निद्रा नहीं ले सकती? इसकी निद्रामें कौन और कैसी बाधा डालता है? रोक टोक करता है? जीवात्मा स्वयं इच्छासे सब करती है तो उसकी निद्राकी इच्छाकी तृप्ति क्यों नहीं होती?

एक सैनिकके सिरपर निद्राके स्थानमें बन्दूककी गोली लगी थी, गोली तो डाक्टरने निकाल दी परन्तु गोली लगनेसे निद्राके स्थानके ज्ञानतंतु और क्रियातंतुके कट जानेसे इस घटनाके बाद उसको कभी निद्रा नहीं आई वह दिन और रात जागता- अनिद्रित ही रहता था। समूची निद्रा नहीं आती थी तो भी उसका स्वास्थ्य अच्छा था। खाता, पीता और जीवनके सब व्यवहार पहलेके अनुसार ही करता रहता था।

दर्शन तंतुकी विकृतिसे आंख और आत्मा होनेपर भी वस्तु दर्शन नहीं होता। ऐसे निद्राके लिये नियत प्रदेश किसी विकारके कारण निष्क्रिय अथवा विकार युक्त बना हो तो निद्रामें अडचन आती है, उत्पात होता है, वैसे उन्माद बने हुए अवयव (स्थान) के साथ आत्माका योग न होता होवे यह भी संभव है।

अहा! कितना अद्भुत! हम अपने आपको नहीं जानते! पर हमें जाननेकी कोशिश करनी चाहिए। यही हमारा सर्वतोमुख्य ध्येय होना चाहिए।

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुद्ध मत

लेखक- श्री सर्वजित गौड, (कुल्लू)

★

वैदिक धर्म आर्य जातिकी परम्परासे सम्पत्ति चली आई है। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक विद्याका यह भण्डार है। वेद परम पवित्र कर्म यज्ञ बताता है।

वैदिक धर्म मानव धर्म है। इसके दस लक्षण हैं। यह निम्नलिखित हैं—

१ धैर्य, २ क्षमा, ३ शान्ति, ४ चोरी न करना, ५ अन्दर बाहरसे शुद्ध रहना, ६ अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखना, किसी प्रकारका लालच न करना, ७ निश्चयात्मक तथा दृढ स्वभाव होना, ८ विद्वान् होना, ९ सत्यपालन करना तथा १० क्रोध न करना।

जब जब आर्य राष्ट्रमें राजा तथा प्रजा इनका पालन छोड कर मनमानी करने लगते हैं तो अत्याचार फैल जाता है। जब घोर अत्याचार फैल जाता है, तो कोई न कोई महान् आत्माका अवतरण इस जातिमें होता है।

वेद चाहता है कि आर्य जाति सब प्रकारसे समृद्ध हो और ऊपर लिखित दस बातोंका भली प्रकार पालन करे। इसलिये यज्ञ करना परम कर्म बताया है, क्योंकि इससे जाति संगठित होकर बलवान् होती है। यज्ञके तीन अंग हैं- इकट्ठा होना, देवपूजा तथा दान देना। यज्ञमें छोटे बडे सब इकट्ठे होते हैं। विद्वानोंका सत्कार होता है और गरीबोंको अन्न, धन तथा वस्त्र दान होता है। अग्निमें घी, जौ, सुगंधि वाली जडीबूटियों तथा द्रव्यका हवन होता है। इससे वायुमंडल शुद्ध होता है, बीमारियां दूर हो जाती हैं तथा वर्षा समय पर होती है तथा अन्न और घास खूब पैदा होकर जाति खुशहाल हो जाती है। गायें घास खूब होनेसे दूध बहुत देंगी, फिर घी तथा दूध खाकर जाति बलवान् तथा बुद्धिमान् होगी। फास्जिम (Fascism) कोम्यूनिजम (Communism) तथा सोशलिज्म (Socialism) की मांग ही न रहेगी। अतः वैदिक यज्ञ सार्वभौम शान्तिका मूल कारण है!

जबतक आर्य राष्ट्रने ऊपर लिखित मानव धर्मका भली प्रकार पालन किया, तबतक आर्य जगतमें शान्ति रही। जब बहुत समय बीत गया, वेदोंकी मर्यादा भंग हो गई, वेदमंत्रोंसे अर्थका अनर्थ होने लगा, पशुयाग आरम्भ हो गया, घोर पापका जमाना आ गया तो कई प्रकारके रोग फैल गये, महामारी बीमारी आदि फैल गई। इसका मूल कारण ब्राह्मण माने जाते हैं। यह ठीक भी है। क्योंकि वेदका पढना पढाना, यज्ञ करना कराना तथा दान लेना और देना इनका कर्तव्य था। यह इसमें रह गये। क्योंकि राज्य शासन क्षत्रियोंके हाथमें था, यह स्वार्थवश हुये। जैसा चाहा वैसा ब्राह्मणोंसे तथा प्रजासे कराया। यदि क्षत्री अपने धर्मका पालन करते और दण्डका ठीक प्रयोग करते तो वैदिकव्यवस्था न बिगडती और हमें यह दिन न देखना पडता!

ऐसे घोर अवैदिक पशुयागके जमानेमें लगभग ५६६ ईस्वी पूर्व कपिलवस्तु राजधानीमें महाराजा शुद्धोदन शाक्य नरेशके कौशल राज्यमें सिद्धार्थ, जिसको गौतम भी कहते हैं, का जन्म हुआ!

आप बडे हुए और राज्यकाज संभाला। आपका विवाह हुआ, आपकी स्त्रीका नाम यशोधरा था। आपके पुत्र हुआ जिसका नाम राहुल था। आप ब्राह्मणोंके पशुयागरूपी अत्याचारसे दुःखी हुए। एक दिन नगरीमें भ्रमण करने गये। वहां एक वृद्ध कुबडी, दुःखी स्त्री देखी। कहीं मुर्दा लिये जाते देखकर बहुत उदास हो गये। सोचा कि संसार दुःख, मृत्यु तथा संतापका घर है। बीमारी, बुढापा तथा मौत तो जीवनमें है ही।

गौतमने सोचा कि मनुष्य जन्म मरणमें क्यों आता है। मौतके बाद क्या होता है? मोक्ष किसे मिलता है? ईश्वर क्या है?

गौतमने सन्यास लिया। रात्रीमें अपनी पत्नी तथा पुत्रको सोया छोडकर जंगलमें चले गये। गयामें एक पीपलके वृक्षके नीचे समाधि लगाई। सातवें दिन समाधि खुली और एक स्त्रीने दूध पिलाया तो उन्हें ज्ञान हुआ कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्माकी रक्षा ही परम धर्म है। इस बोधको पाकर वह बुद्ध कहाए और उन्होंने निम्न उपदेश किया:—

१ सद्विचार, २ सच्ची इच्छायें, ३ सत्य वचन, ४ सदुपाय, ५ सद्वृत्ति, ६ सद्भावावेश, ७ सद्मानसिकता, ८ सदाचार। यह अष्ट मार्ग हैं। ईश्वर तथा मनुष्यके बीच किसी आध्यमिककी आवश्यकता नहीं। मुक्ति अष्ट मार्गको अपनानेवालेको हो सकती है।

इस प्रकार भगवान् बुद्धने अपना उपदेश किया। बुद्धमत थोडे समयमें सारे भारत, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, मलाया, स्याम, हिन्दचीन, लंका तथा इतर देशोंमें फैल गया। पशुयाग आदि बन्द हो गए। बाल, वृद्ध तथा जवान स्त्री पुरुष सब बुद्ध भिक्षु बन गये। जगह जगह मठ बन गये। हजारों भिक्षु उनमें रहने लगे। बुद्ध मत ही राज्य धर्म बन गया। भिक्षुओंका सारा खर्च राजाकी ओर से होने लगा।

भिक्षु देशदेशान्तरमें प्रचारार्थ घूमने लगे 'अहिंसा परमोधर्मः' का प्रचार हुआ। परन्तु जो भिक्षु पर्वतीय ठंडे देशोंमें जाते थे और भिक्षा करते थे उन्हें भिक्षा पात्रमें मांस मिलने लगा। उन्होंने यह समस्या भगवान् बुद्धके आगे रखी। उन्हें आज्ञा मिली कि वह किसी वस्तुकी इच्छा प्रकट न करें, जो प्राप्त हो स्वीकार कर लें। बुद्ध भगवान् ८० सालकी आयुमें महानिर्वाणको प्राप्त हुए।

भगवान् बुद्धके बाद बौद्धोंके दो भाग हुये। एक महायान, दूसरा हीनयान। महायान बुद्ध भगवान्को परमात्मा मानने लगे परन्तु हीनयान नहीं। महायान बोधिसत्व जो बुद्धका काम करते थे उन्हें देवता मानने लगे। हीनयान केवल बुद्धको मानते हैं।

समय बीत गया बुद्धमतके माननेवालोंके आचार, विचार रहन सहन, खानपानादिमें फर्क आ गया। स्त्री-पुरुषोंके साथ रहनेसे भ्रष्टाचार फैल गया। 'अहिंसा परमोधर्मः' नाम मात्र उपदेशार्थ रह गया। व्यभिचार तथा मांसाहार सर्वत्र फैल गया!

जहां बुद्ध भगवान आस्तिक थे, वहां उनके माननेवाले नास्तिक बन गये। जहां उन्होंने जीव हिंसाको दूर किया था वहां आज उनके मतावलम्बी निहायत बेदर्दीसे मांस प्राप्त करके खाते हैं।

लाहौल, तिब्बत, चीन आदि देशोंके लोग पशुके नाक, मुँह, गुदा, कान आदि सब सांसके द्वारोंको बन्द कर देते हैं यानी सूईतागेसे सी देते हैं। जब विचारेका सांस फूल जाता है और इस बेबसीसे मर जाता है, तो काट कर खाते हैं। इस प्रकार वह उसके रुधिरकी एक बून्द भी बाहर नहीं गिरने देते। जो लोग बौद्ध कहाते हैं वह बुद्ध भगवान् के उपदेशके प्रति कुछ भी नहीं जानते।

एक बार श्री राहुल सांकृत्यायन जब कुल्लू यात्रा पर पधारे थे मैंने उनसे पूछा कि हिन्दू बुद्ध भगवान्को अवतार मानते हैं। आप क्या मानते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि हम उनको अवतार मानते हैं।

जितने मतमतान्तर इस समय प्रचलित हैं, यह सब ऊपर लिखित मानव धर्मके अंग हैं, परन्तु इनके माननेवालोंमें रीति रिवाज तथा सदाचारमें पापाचरणने स्वार्थवश घर किया हुआ है। इस भ्रष्टाचारको दूर करनेके काम सबोंको करना चाहिये।

परमात्माने मनुष्यको बुद्धि देकर संसारमें प्राणीमात्रमें उत्तम बनाया है। यदि वह सारे संसार पर राज्य करना चाहता है, तो उसे दयावान् होना चाहिये। किसीका अधिकार नहीं छीनना चाहिये। जो राज्य अधिकारी अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, वह अपने अधिकारवाला नहीं रह सकता। यदि कोई राष्ट्र अपने कर्मचारियोंको कर्तव्य पालन न करते हुये भी अपने पदपर कायम रखता है, तो वह राष्ट्र शीघ्र ही नष्टभ्रष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जो जाति अपने धर्मपर नहीं चलती, वह शीघ्र अपने अस्तित्वको खो देती है। इसीलिये हमारे शास्त्र कहते हैं, कि जो धर्मकी रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

धर्म एव हतो हन्ति,
धर्मो रक्षति रक्षितः,
तस्मात् धर्मो न हन्तव्यो
मा नो धर्मो हतो वधीत्।

धर्मका अर्थ है कर्तव्य, फर्ज (duty) मनुष्यका कर्तव्य है मनु महाराजके कहे धर्मके ऊपर लिखित दस लक्षणोंका पालन करना। इसीके पालन करानेके लिये भगवान् बुद्ध आये और बुद्ध मतका प्रचार किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स मा लो च ना

वैशेषिकदर्शनम् (ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्)

लेखक— श्री ब्रह्ममुनि विद्यामार्तण्ड; प्रकाशक—आर्यकुमार महासभा, आत्माराम रोड, बडौदा; मूल्य २)

महर्षि कणादके वैशेषिक दर्शनका स्थान भारतीय षड्-दर्शनोंमें अत्यन्त मुख्य है। इस दर्शनपर रावणका भी भाष्य था ऐसा प्रसिद्ध है, पर वह आजकल नहीं मिलता। प्रशस्तपादभाष्य वैशेषिक पर एक स्वतंत्र ग्रंथ है। इस भाष्यमें वैशेषिक दर्शनके सिद्धान्तोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। दूसरा भाष्य 'उपस्कार भाष्य' सूत्रोंपर है, जिसके रचयिता श्री शंकरमिश्र हैं। तीसरा भाष्य अभी विद्वानोंके सामने आया है श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी द्वारा कृत 'ब्रह्ममुनिभाष्य'। यह भाष्य भी संस्कृतमें है। विद्वत्तामें यह भाष्य अन्य भाष्योंकी कोटिमें ही रखने योग्य है। विषयका प्रतिपादन इतनी सुन्दर रीतिसे किया गया है कि पढते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों सूत्रकारने स्वयं ही भाष्य लिखा हो। भाष्यकारका मुख्य काम यही होता है कि वह सूत्रकारकी आत्मामें उतरकर उसके वास्तविक मन्तव्यको लाकर लोगोंके सामने प्रस्तुत कर दे। श्री ब्रह्म-मुनिजी इस दिशामें कितने सफल हुए है, इसका सही अंकन पाठक भाष्य पढकर ही समझ सकता है।

भाष्यकी भाषा संस्कृत है, पर अति सरल। भाषा दार्श-निक होते हुए सहज गम्य। वैशेषिकदर्शनके कठिनसे कठिन स्थलोंको भी आसानीसे समझा देनेवाला यह भाष्य प्रशंसनीय है।

आशा है कि यह संस्कृत व दर्शनप्रेमियोंके लिए आक-र्षणका केन्द्र बनेगा।

बालजीवन-सोपान

लेखक— स्वामी ब्रह्ममुनिजी विद्यामार्तण्ड, पुस्तक मिलनेका पता— सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान) नई दिल्ली १, पृ. सं. १२१ मूल्य— १ रु. २५ न. पै.।

बालक राष्ट्रके भविष्य हैं, उन्हींपर राष्ट्रकी आशायें अवलम्बित रहती हैं। अतः बालकोंका निर्माण करना राष्ट्र-की सेवा है। शुरूसे ही माता, पिता आचार्य द्वारा बालकके जीवनका निर्माण होना चाहिए, जिससे कि आगे चलकर वह राष्ट्रका एक सच्चा नागरिक बन सके। बालकको बना-नेके मार्ग हैं, अनुशासन, ब्रह्मचर्य, विद्या, शिष्टाचार, सदा-चार आदि। माता पिताको चाहिए कि वे अपने बालकोंको इनकी शिक्षा शुरूसे ही दें।

यह उपर्युक्त पुस्तकका सारांश है। श्री स्वामीजीने जहां दर्शनोंपर भाष्य किए हैं, वहां इस विषयपर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। दर्शनोंके भाष्य करनेवाला विद्वान् बालो-पयोगी साहित्य भी लिख सकता है, इस कथनका साक्षी स्वामीजीकी यह पुस्तक है।

इस पुस्तकमें मातापिताओंको उनके कर्तव्यके प्रति भी विशेष चेतावनी दी है। बालकका बनना बिगडना उसके माता पिता पर निर्भर है।

यह पुस्तक सभीके द्वारा पढने योग्य है।

परिवर्तनम्

मराठी लेखक— गणेशहरि केसकर; अनुवादक—बालाजी दत्तात्रेय तांबुले; प्रकाशक— रतनलाल अग्रवाल बी. ए., माडर्न बुक स्टोर्स; अकोला— धन्तोली, नागपुर- १; मूल्य ६२ न. पै.

सम्राट् महान् अशोकने कलिंग राज्यपर चढाई की। दोनों राज्योंमें घमासान युद्ध हुआ। विजय अशोकके हाथमें रही। पर लडाईके समाप्त होनेके बाद अशोकने कलिंग जनताकी जो स्थिति देखी, उससे वह बिल्कुल हताश हो गया। चारों ओर खून ही खून; घायलोंकी चीत्कार; रण-क्षेत्रमें मरे हुओंके लिए उनके सम्बन्धियोंका विलाप, यह सारा ऐसा दृश्य था जिसने अशोकके हृदयको कंपा दिया। उस बीभत्स दृश्यने सम्राट् अशोकको परिव्राट् बना दिया। उसने प्रतिज्ञा करली कि अब वह कभी भी लडाई नहीं करेगा, और महात्मा बुद्धके शान्तिमय उपदेशोंका पालन करेगा।

यह है संक्षिप्त कथा 'परिवर्तनम्' नामक लघु नाटिका की। पुस्तक मूलतः मराठी भाषामें है। यह एकांकी आकाशवाणी पर भी प्रसारित हो चुकी है। श्री केसकर मूल मराठी नाटकके प्रणेता हैं और उनके मित्र श्री ताम्बु-लेजीने उसका संस्कृतमें अनुवाद किया है। संस्कृतसाहि-त्यमें ऐसे ऐतिहासिक नाटक नाटिकाओंकी बडी कमी है। श्री तांबुलेजीने नाटिकाका अनुवाद करके बडा भारी प्रयास किया है। भाषा समास बहुला न होकर सरल और सुगम्य है।

मूल लेखक और अनुवादक दोनों ही प्रशंसाके पात्र हैं।

● ● ●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुलसीके उपवन लगाइये

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी, गव्हर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, P. O. पीपलखेडा, धार)

⊙

तुलसी एक असाधारण पौधा है, जिससे हम युगोंसे लाभान्वित हो रहे हैं। हमारी संस्कृतिमें भी तुलसीका महत्व सर्वोपरि है। घर घरमें तुलसीपूजा और तुलसीको दीपदानकी पुण्यप्रथा महिलायें सम्पन्न करती हैं। सभी श्रद्धा भावसे तुलसी पत्रको प्रसाद रूपमें ग्रहण करते हैं। पूजा अर्चनामें तुलसीको प्राधान्य है। तुलसीकी मालासे किया गया जप 'सात्विक' जप माना जाता है। इस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोणसे तुलसी हमारे लिये प्रधान बनाई गई थी, जो हमारे मेधावी पूर्वजोंकी देन है, क्योंकि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे इसकी महिमा और गुण-शीलता भी बहुत अधिक है। आयुर्वेद शास्त्रोंने एक स्वरसे इसे स्वास्थ्य-वर्द्धक और रोग-निवारक घोषित किया है—

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः।
दिशो दिशश्च पूतास्युर्भूतग्रामश्चतुर्विधः॥

तुलसीकी गंध लेकर वायु जहां कहीं पहुंचती है। उस दिशामें रहनेवाले प्राणी तथा स्थान पवित्र हो जाते हैं।

इसी पावन उद्देश्यको तो ध्यानमें रखते हुए हमारे ऋषि रूप शास्त्रकारोंने आदेश दिया है—

रोपनात् पालनात् सेकात् दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्।
तुलसी दहति पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम्॥

तुलसी लगानेसे, पालनेसे, सींचनेसे, दर्शन करनेसे, स्पर्श करनेसे मनुष्योंके मन, वचन और कायाके पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलस्यां सकला देवाः वसंति सततं यतः।
अतस्तामर्चयेल्लोकः सर्वान्देवान् समर्चयन्॥

तुलसीमें सब देवता बसते हैं, इसलिये संसारको उसकी अर्चना करनी चाहिये।

इसीलिये तो हम सभी तुलसीको देवी रूपमें पूजन करते हुए, यह भावना प्रार्थनाके रूपमें निवेदन करते हैं।

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।

(तुलसी तू अकाल मृत्यु हरण करनेवाली और सब रोगोंको दूर करनेवाली है।)

इसी प्रकार जहां हमारे धर्मशास्त्रोंमें इसकी महत्ता मुक्त कंठसे गाई है, वहीं आयुर्वेदीय शास्त्रोंमें भी कई स्थानोंपर तुलसीको रोग निवारक मानते हुए महिमा गान किया है।

तुलसी पित्तकृत् वातक्रिमिदौर्गन्ध्यनाशिनी।
पार्श्वशूलारतिश्वासकासहिक्काविकारजित्॥
—भाव प्रकाश

(तुलसी पित्तकारक, वात, क्रिमि, तथा दुर्गन्ध नाशक, पसलीका दर्द, रुखी खांसी, श्वास, और हिचकी आदि विकारोंको जीतनेवाली है।)

गौरवे शिरसः शूले पीनसेऽर्धावभेदके।
क्रिमिव्याधावपस्मारे श्वासनाशे प्रमोहके॥
च. सू. अ. २।५

(सिरका भारीपन, पीनस, सिरदर्द, आधाशीशी, मृगी, नकिका रोग, कृमिरोग तुलसीसे दूर होते हैं।)

तुलसी कटुता तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्।
दीपनी कुष्ठहृच्छ्वासपार्श्वरुक्कफवातजित्॥

(तुलसी कटु, तिक्त, हृदयको बल देनेवाली, उष्ण, दाह, पित्तकारक, दीपन, कुष्ठ दूर करनेवाली, श्वास तथा पसलीकी पीडा मिटानेवाली एवं कफवातको जीतनेवाली है।)

तुलसी कटुतिक्तोष्णा कृमिघ्ना श्लेष्मवातजित्।
अग्निमान्द्यहरा रुक्षा रुचिकृद्वांतिशान्तिकृत्॥
—राजनिघण्टु

(तुलसीकटु, तिक्त, उष्ण, कृमिनाशक, कफ और वातको जीतनेवाली, मन्दाग्नि दूर करनेवाली, रूक्ष, रुचिकारक और वमनको शान्त करनेवाली है।)

धर्मशास्त्रों तथा वनस्पतिशास्त्रोंके अनुसार तुलसीके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कई प्रकारके पौधोंका वर्णन मिलता है। जो निम्नानुसार है। १ सुरमा, २ दमनक, ३ मरुवक, ४ वनपर्वरी, ५ कुठेरक, ६ वर्वरी आदि नामोंका उल्लेख है। लेकिन निम्न तीन प्रकारके पौधे तो सभी जगह प्राप्त होते हैं।

१ तुलसी, २ वन तुलसी, ३ मरुआ।

वन तुलसी तथा मरुआमें हवा शुद्ध करनेकी पर्याप्त शक्ति होती है। मरूआ फोडे फुन्सियोंकी अचूक औषधि है। कई मनुष्योंने इसकी रोग निवारक शक्तिसे लाभ उठाया है। प्रसिद्ध लेखक श्री. ई. रावर्ट्सने अपनी पुस्तक Native Remedie's use in snake bites (नेटिव रमैडीज यूज इन स्नेक बाइटस्।) में तुलसी द्वारा सर्पदंश पर किये जानेवाले कई प्रयोगोंका वर्णन किया है। उनमेंसे एक यह भी है—

'तुलसीकी जड और पत्ते पीसकर उसका रस करीब आधा छटांक रोगीको पिलाइये।'

प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री डा. जावेन लिखते हैं कि तुलसीमें रक्तको साफ करने तथा विजातीय कीडोंको मारनेकी अद्भुत शक्ति है। आंतोंमें इकट्ठे हुये विषको शोधन करने तथा ज्वरको हटानेकी इसमें पर्याप्त शक्ति पाई जाती है।

इसी प्रकार सरजार्ज वर्डउडने तुलसीसे मलेरिया रोग निवारणका अनुभव २९।४।१९०५ के 'टाइम्स' में लिखा था। इसी तरह कई विद्वानों, चिकित्साशास्त्रियोंने तुलसीके अमृतोपम गुणोंसे पूरा पूरा लाभ उठाया है।

डा. रामचरणजी महेन्द्र M. A. Ph. D. लिखते हैं कि— 'अनुसंधानसे विदित हुआ है कि तुलसीमें पायमल नामक एक तत्व पाया जाता है। जो कुष्ठ (कोढ) जैसी महाव्याधिके लिये गुणकारी प्रमाणित हुआ है। क्षयरोगियोंके शरीरपर यदि तुलसीका रस मला जाय, तो क्षय नष्ट होता है।

अतः आवश्यकता है कि अब हम सभी तुलसीके अमृत तुल्य गुणोंसे यथोचित लाभ लेनेका प्रयत्न करें। अब घर घरमें तुलसीके पौधे लगाकर उनकी सेवा करके इस अमृतवृक्षका प्रचार प्रसार कर दुर्गन्धमय वायु रंजित संसारको शुद्ध वायु प्रदान करवानेकी दिशामें कदम उठावें।

महापुरुषकीर्तनम् --- भाषानुवादसहितम्

प्रणेता– पं. धर्मदेवजी, विद्यावाचस्पति विद्यामार्तण्ड, आनन्द कुटीर; ज्वालापुर (उ. प्र.) पृ. २२८, मूल्य सजिल्द २-२५ न. पै. अजिल्द २)

इस संस्कृत पद्य काव्यमें मङ्गलाचरणके रूपमें परमेश्वरके गुणकीर्तनको करते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगिराज श्रीकृष्ण, महात्मा गौतमबुद्ध, भक्त कबीर, गुरु नानक, महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री अरविन्द आदि महात्माओं; वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि कवियों; स्वामी शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि दार्शनिकों, देशविदेशके प्रसिद्ध समाज सुधारकों; महाराणा प्रतापसिंह, महाराष्ट्र केसरी शिवाजी आदि वीरों; गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह तथा उनके वीर पुत्र, वीर बालक हकीकतराय आदि हुतात्माओं तथा लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, नेता सुभाषचन्द्रजी, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि राष्ट्रनायक देशभक्तों और विदेशोंके सुप्रसिद्ध महापुरुषोंका भी सरल ललित मधुर संस्कृतमें गुणकीर्तन करते हुए वेदमूर्ति पं. सातवलेकरजीके शब्दोंमें 'सागरको गागर' में भर दिया गया है। भारतके मान्य राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन्, श्री अनन्तशयनम् आयंगार, श्री काका कालेलकर, विद्वद्वर पं. चूडामणिजी शास्त्री भू. पू. आचार्य संस्कृत कालेज मुलतान, डा. मङ्गलदेवजी शास्त्री, डा. बाबूरामजी सक्सेना आदि सुप्रसिद्ध विद्वानों तथा संस्कृत-प्रतिभा, संस्कृत-साकेत, विश्वसंस्कृत-पत्रिका, हिन्दुस्तान, विश्वज्योति, वैदिक धर्म, सार्वदेशिक आदि प्रतिष्ठित पत्रों द्वारा प्रशंसित और उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत इस नवस्फूर्तिदायक चरित्रनिर्माणोपयोगी ज्ञानवर्धक पुस्तकको आज ही निम्न पतेपर मँगवाकर लाभ उठाइये। मैनेजर– आनन्दकुटीर, ज्वालापुर (उ. प्र.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ द्वैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जांयगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu